स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–20, अंक–5, वैशाख–ज्येष्ठ 2069, मई 2012

संपादक
विक्रम उपाध्याय

कार्यालय
धर्मक्षेत्र, सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022 से प्रकाशित
दूरभाष : 011–26184595
स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली–32 से मुद्रित।

आवरण कथा–4

देश की मुद्रा का कमजोर होना निर्यातकों के लिए तो वरदान हो सकता है, क्योंकि उनके लाभ काफी बढ़ जाते हैं, लेकिन महंगाई से पिसती जनता की मुश्किलें गिरते रूपये के कारण और बढ़ने वाली हैं...

कवर पेज

अनुक्रम

आवरण लेख
गिरते रुपये को थामने की जरूरत
– डॉ. अश्विनी महाजन /4

जल
जल को निजी एकाधिकार को सौंपना अमानवीय
– भगवती प्रकाश /6

अर्थव्यवस्था
असफल आर्थिक मॉडल
– डॉ. भरत झुनझुनवाला /10

अर्थतंत्र
कोमा में तो नहीं पर बेहोश जरूर है
– आलोक पुराणिक /13

उद्योग जगत
निर्यात बढ़ाने के लिए कैसी हो नीति
– जयंतीलाल भंडारी /16

अंतर्राष्ट्रीय
बुनियादी बदलाव में विफल आंदोलन
– भारत डोगरा /19

चर्चा : क्या कर लेगा अकेला पार्षद
– जवाहरलाल कौल /21

धरोहर
कब बचाएंगे अपनी जीवनदायी नदियों को..?
– निरंकार सिंह /24

पर्यावरण
आधुनिकता का कचरा
– अमित कुमार /26

बाल श्रम
बलात श्रम का अभिशाप
– बरूण कुमार सिंह /29

बोफोर्स काण्ड
फिर निकला बोतल ने बोफोर्स का जिन्न
– डॉ. महेश परिमल /31

सवाल
माओवादियों से कैसे निपटें
– डॉ. वेद प्रताप वैदिक /33

पाठकनामा/2, रपट/35

पाठकनामा

कब मिलेगी लोगों को मूलभूत जरूरतें

स्वदेशी पत्रिका एक तरह से सम्राज्यवाद की विरोधी है, परंतु आज हम लोकतंत्र देश के निवासी होने के बाद भी साम्राज्यवाद में ही फंसे पड़े है। सन 1947 से अब तक हमारे देश में गरीबी नहीं मिटी है और न ही लोगों की मूलभूत जरूरतें आज तक पूरी हुई हैं। कितनी ही बार सरकारें चेंज हो गई और कितनी ही सरकारों ने जनता से जो भी वायदे किए, उसे कभी भी पूरा नहीं किया। देखा जाए तो आज के दौर में जनता की केवल महत्त्वपूर्ण तीन ही जरूरतमंद की चीजें है। एक बेहतर रहन–सहन, दूसरा शिक्षा और तीसरा स्वास्थ्य। लेकिन आज इन्हीं चीजें का निजीकरण हो रहा है। जहां सरकारी सेक्टर में बेहतर शिक्षा होने के बाद भी शिक्षक पढ़ने को तैयार नहीं है और बेहतर सरकारी अस्पताल होने के बावजूद सरकारी डॉक्टर और कर्मचारी काम करने को तैयार नहीं है। आखिर सरकार इन पर ध्यान क्यों नहीं देती है। आज प्राइवेट अस्पतालों की संख्या दिन–प्रति–दिन बढ़ती ही जा रही है वहीं दूसरी तरफ सरकारी अस्पतालों का हाल–बेहाल होता जा रहा है। लोकतंत्र में सरकार का कर्तव्य बनता है कि वह अपने नागरिक को बेहतर रहन–सहन, बेहतर शिक्षा और बेहतर स्वास्थ्य सरकार की तरफ से निःशुल्क दिया जाए। परंतु आज सरकारी अस्पतालों की हालत देखकर, लोग प्राइवेट सेक्टर में किसी तरह अपना इलाज करते हैं। इसकी एवज में कुछ लोग अपनी खेतीबाड़ी और जमीन तक बेच देते हैं। आखिर सरकार कब लोगों की मूलभूत जरूरतों को पूरा करेगी, कब जनता सरकार से पूछेगी कि आखिर हमने आपको क्यों चुना है? तो फिर हमारी ये तीन महत्वपूर्ण जरूरतों पर क्यों नहीं ध्यान दिया जाता।

– अमरेश कुमार, आया नगर, दिल्ली

आखिर क्यों टूट रहे है संयुक्त परिवार

मुझे स्वदेशी पत्रिका मेरे रिश्तेदार द्वारा प्राप्त हुई। पत्रिका पढ़ी, लेकिन कुछ विषयों पर मैं सहमत नहीं हूँ। अक्सर आप अपनी पत्रिका में देश की समस्याओं के बारे में लिखते हैं परंतु आज तक किसी भी सरकार ने कोई भी देश की समस्याओं पर पूर्ण रूप से ध्यान नहीं दिया है। आज भारत देश में संयुक्त परिवार लगातार टूटते जा रहे हैं। जिसकी तरफ किसी का ध्यान नहीं जा रहा है। आज से दो दशक पूर्व संयुक्त परिवार होने से व्यक्ति को काफी लाभ प्राप्त होता था। इसके अलावा उसे हर समस्या का हल, उसे सुंयक्त परिवार द्वारा मिल जाता था। परंतु जब से देश में पाश्चात्य संस्कृति का आवागमन हुआ है तभी से पढ़ा लिखा युवक संयुक्त परिवार में घुटन महसूस करने लगा है। उसे संयुक्त परिवार से मानों जैसे नफरत सी हो गई थी, उसे लगता है कि अगर कोई बुजुर्ग उसे सलाह दे रहा है तो व्यर्थ ही सलाह देता है – ऐसा वो समझता है। शहरों में तो संयुक्त परिवार की संख्या नगण्य हो चुकी है लेकिन बीते तीन–चार साल से जिस तरह महंगाई बढ़ी है उसकी वजह से गांवों में भी संयुक्त परिवार अब टूटने लगे है। कारण बेरोजगारों की संख्या बढ़ना और आमदनी कम होना। अब गांवों में संयुक्त परिवार की संख्या मां–बाप और बेटों तक सीमित हो गई है। चाचा–चाची, ताऊ–ताई साथ–साथ नहीं रहते हैं – कारण बढ़ती हुई महंगाई। जहां भारत देश के निर्माण में सुंयक्त परिवार की भूमिका काफी महत्वपूर्ण थी आज वो खत्म होती जा रही है। अतः हम सभी भारतीयों को इस बारे में सोचना चाहिए और फिर से संयुक्त परिवार का निर्माण करना चाहिए।

– दिनेश रावत (प्रधान), गोपेश्वर (कॉलेज के पास) उत्तरांचल

आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

संपादकीय कार्यालय

''धर्मक्षेत्र'' शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

दूरभाष : 011–26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com

अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क *'स्वदेशी पत्रिका'* दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 100 रुपए

आजीवन सदस्यता शुल्कः 1,000 रुपए

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित करें।

(ध्यानार्थ : कृपया अपना नाम व पता साफ अक्षरों में लिखें)

उन्होंने कहा

संसद में कुछ अच्छे लोग हैं जिनका हम सम्मान करते हैं, लेकिन वहां हत्यारे, लुटेरे और जाहिल भी बैठे हैं। अब भारत की संसद को बचाना है। वहां से भ्रष्ट नेताओं, लुटेरों को हटाना है।

– रामदेव बाबा

भ्रष्टाचार के खात्मे की शुरुआत घर से होने चाहिए। बच्चे इसकी पहल करके देश को भ्रष्टाचार से मुक्त कर सकते हैं।

– एपीजे अब्दुल कलाम

अमेरिकी विदेशमंत्री ने ईरान से तेल आयात को बंद करने की सलाह देकर हमारे निजी मामलों में दखल दिया है। ऐसा लगता है कि अमेरिका के आगे सरकार खुद को मजबूर पा रही है।

– रामगोपाल यादव

नक्सलवाद पर एक राष्ट्रीय नीति बनाए जाने की जरूरत है। मेरी राय में नीति ऐसी होनी चाहिए कि किसी भी व्यक्ति का अपहरण होने पर किसी भी आरोपी को नहीं छोड़ा जाएगा।

– रमन सिंह

डॉ. मनमोहन सिंह ने सोचा था कि बड़ी कंपनियों के कंधे पर चढ़कर वह निवेश, विकास दर और निर्यात बढ़ाएंगे, पर हो रहा है इसका ठीक उलटा। आम आदमी पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव से मनमोहन सिंह अनभिज्ञ हैं अथवा अनभिज्ञ रहना चाहते हैं।

– डॉ. भरत झुनझुनवाला

संपादकीय

प्रणव पटकथा का पार्श्वकथन

प्रणव मुखर्जी सप्रंग सरकार के सबसे भरोसे वाले और कहें तो सबसे विश्वसनीय मंत्री हैं। केंद्र की कांग्रेस नेतृत्व वाली सरकार की आलोचना करने वाले विपक्ष के नेता भी आलोचनाओं के बीच हमेंशा ही प्रणव मुखर्जी की तारीफ कर दिया करते हैं। उन्हें आम तौर पर कांग्रेस का संकट मोचक माना जाता है। सरकार चलाने में उनकी भूमिका किसी से भी कम नहीं है। वे राजनीतिक रूप से भी काफी सक्रिय हैं। कुछ कांग्रेस के नेता ही कहते हैं कि 'प्रणव दा' इस समय पार्टी और सरकार दोनों के लिए बहुत ज्यादा अहमियत रखते हैं। वैसे में यदि यह खबर आती हैं कि कांग्रेस उनकी राजनीतिक सक्रियता और शासन के प्रति उनके अनुभव और जिम्मेदारियों से दूर कर राष्ट्रपति भवन भेजने की तैयारी कर रही है, तो लोगों का चौकना स्वाभाविक है। खासकर तब और जब देश को एक ऐसे काबिल अर्थमंत्री की आवश्यकता है, जो आसन्न आर्थिक संकट से उबार ले। सबको मालूम हैं कि देश गंभीर आर्थिक संकट में फंसा है। चारों तरफ हाहाकार मचने लगा है। पहले ही गलत नीतियों के कारण लाखों किसान आत्महत्या कर चुके हैं, अब आम आदमी भी रोजमर्रा की जरूरतों और व्यापार घाटे के कारण आत्महत्या कर रहा है। पिछले एक महीने में सैकड़ों ऐसी खबरें आ चुकी है कि आर्थिक तंगी के कारण लोग होटलों मॉलों और ऊंची इमारतों से छलांग लगा कर अपनी जिंदगी समाप्त कर चुके हैं। अकेले दिल्ली की मेट्रो लाइनों पर एक दर्जन लोग अपनी जीवन लीला समाप्त कर चुके हैं। यह केवल निजी क्षेत्रों की समस्या नहीं है। केंद्र के स्तर पर ही कई मंत्रालय दिवालिये के कगार पर खड़े हैं। हाल ही में रेल मंत्री के रूप में अपना इस्तीफा दे चुके दिनेश त्रिवेदी ने कहा था कि रेलवे दिवालियेपन की कगार पर खड़ा है, उसके पास नई दिल्ली रेलवे स्टेशन की साफ–सफाई के लिए पैसे नहीं हैं। अब एयर इंडिया बंद होने की कगार पर है। दिसंबर से पायलटों को तन्ख्वाह नहीं मिली है। तमाम विदेशी उड़ान रद्द हो रहे हैं। दुनिया की नजर में भारत की क्या हैसियत बन रही है, यह कांग्रेस की सरकार से ज्यादा कोई नहीं बता सकता। तमाम रेटिंग एजेंसियां भारत की साख पर सवाल उठा रही हैं। हाल ही में एक विदेशी रेटिंग एजेंसी ने भारत में निवेश को जोखिम करार दिया,उसके बाद से विदेशी संस्थागत निवेशकों ने यहां से पैसा निकालना शुरू कर दिया। शेयर बाजार बुरी तरह से हिचकोले खा रहा है। देश धीरे धीरे महामंदी की गिरफ्त में आता जा रहा है। प्रणव मुखर्जी की तारीफ करनी पड़ेगी कि विदेशी एजेंसियों के दबाव को न सहते हुए उन्हें विदेश में हुए हुचिसन और वोडाफोन के बीच डील पर कर लगाया और 20 हजार करोड़ रुपये की वसूली का रास्ता साफ किया। किसी और वित मंत्री से ऐसा दृढ निर्णय की अपेक्षा कम ही होती। ऐसे में उन्हें वित मंत्री जैसे महत्वपूर्ण ओहदे से हटाकर संवैधानिक पद पर बिठाने की कवायद क्या संदेश देगा। हम यहां अपनी बात नहीं कर रहे हैं। मुंबई से निकल रहे एक अंग्रेजी दैनिक डीएनए ने कई महत्वपूर्ण पाठकों के विचार इस विषय पर प्रकाशित किये हैं। इनमें से कुछ को लगता है कि कांग्रेस में कुछ नेताओं के लिए प्रणव मुखर्जी आंखों की किरकिरी बनें हुए हैं। वे उन प्रस्तावों और योजनाओं को वित मंत्रालय से पास नहीं करा पा रहे हैं जिनमें उनका भी कहीं न कहीं व्यक्तिगत हित जुड़ा हुआ है। 'प्रणव दा' को वित्त मंत्रालय से बाहर भेजने की मुहिम में कुछ ऐसे नेता या मंत्री भी शामिल हैं, जिन्होंने पूर्व में वित्त मंत्रालय में रहते हुए तमाम गड़बड़ियां की है, और वे उस पर परदा डाले रखना चाहते हैं या फिर उसकी लीपापोती करना चाहते है। वित्तमंत्री के रूप में प्रणव मुखर्जी के रहते वे ऐसा नहीं कर पा रहे हैं। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि पूर्व में हुए कुछ महत्वपूर्ण घोटालों में वित्त मंत्रालय के कुछ निर्णय भी शामिल हैं, जिन्हें बाहर आने का खतरा अभी भी बरकरार है। इसलिए वे चाहते हैं कि अपनी जिंदगी में राजनीतिक शूचिता का पालन करने वाले प्रणव मुखर्जी को वहां से किसी तरह हटाया जाए। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि निष्क्रिय से दिखने वाले मनमोहन सिंह अगले चुनाव में शायद प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार के रूप में जनता के सामने प्रस्तुत न किए जाएं। वैसी स्थिति में प्रणवमुखर्जी सबसे प्रबल दावेदार हो सकते हैं। दस जनपथ और उससे जुड़े तमाम समर्थक नेता अगली बार राहुल गांधी को प्रधानमंत्री के रूप में देखने के मंसूबे बना चुके हैं। वे हर मंच और सभा से इस बात की पुर जोर कोशिश कर रहे हैं कि कांग्रेस में राहुल गांधी को कोई विकल्प न दिखे। वे राहुल गांधी को एक जादू के रूप में पेश करना चाहते है, मानों भारत की हर समस्या का समाधान राहुल गांधी के पास ही है। उन लोगों के लिए प्रणव मुखर्जी हालांकि कोई बाधा नहीं नजर नहीं आते, पर राजनीतिक विश्लेषकों और मीडिया के सामने कोई मजबूत विकल्प रहने नहीं देना चाहते। कांग्रेस के लिए इस समय 2014 का चुनाव महत्वपूर्ण है। सत्ता में वापसी और राहुल गांधी की ताजपोशी उनकी सर्वोच्च प्राथमिकता है। पर देश को इस हालात से निकालना जनता के लिए परम आवश्यक है। इसके पहले की त्राहि त्राहि मच जाए सरकार को और वित्त मंत्रालय को कोई ठोस कार्यक्रम बना लेना चाहिए। सरकार को मालूम होना चाहिए कि उनकी गलतियों और नाकामियों के कारण किसान या आम आदमी मौत को गले लगा रहा है। एक छोटी सी घटना मन को झकझोर सकती है – आगरा के पास एक किसान ने सिर्फ इसलिए मौत को गले लगा लिया कि आलू की कीमत चार महीने में चौगुना हो गई और उसने आर्थिक दबाव के कारण अपनी फसल औने–पौने दाम पर खेत में ही बेच दिया। कर्ज देने वाले उसके जान के दुश्मन बने हुए थे, उसके पास इतना समय नहीं बचा था कि वह फसल कुछ दिन के लिए रोक कर बेचे । यही हाल गेहूं के किसानों की होने वाली है। क्या माने हाड़–मांस गलाकर अच्छी फसल उगाने वाले किसानों की गलती या राजनीतिक जोड़ तोड़ में मशगूल सत्तानसीनों की नीतियों की गलती। परिणाम सिर्फ जनता को भुगतना है।

गिरते रूपये को थामने की जरूरत

देश की मुद्रा का कमजोर होना निर्यातकों के लिए तो वरदान हो सकता है, क्योंकि उनके लाभ काफी बढ़ जाते हैं, लेकिन महंगाई से पिसती जनता की मुश्किलें गिरते रूपये के कारण और बढ़ने वाली हैं। रूपये के कमजोर होने का मतलब है प्रत्येक डॉलर के लिए ज्यादा रूपये देना। हर वर्ष देश को लगभग 2 लाख 50 करोड़ रूपये की विदेशी मुद्रा खनिज तेल के आयात पर खर्च करनी पड़ती है।

■ डॉ. अश्विनी महाजन

पिछले कुछ समय से रूपया लगातार गिरता जा रहा है और मई 4, 2012 तक गिरते हुए यह 53.5 रूपये प्रति डॉलर के स्तर तक पहुंच गया। गौरतलब है कि 15 दिसम्बर 2011 को रूपया अपने न्यूनतम स्तर 54.30 रूपये प्रति डॉलर तक पहुंच

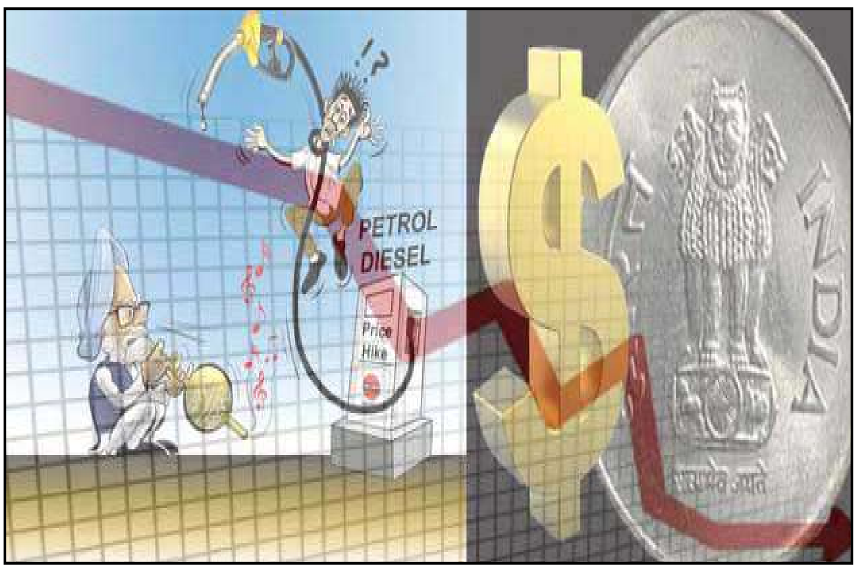

गया था। इसके बाद रूपया पहले से कुछ सुधरा और 6.2.2012 को यह 48.7 रूपये प्रति डॉलर तक सुधर गया। माना जा रहा है कि यूरोप के आर्थिक संकट के चलते रूपये में लगातार गिरावट आ रही है। जानकारों का कहना है कि रूपये को कमजोर करने में बढ़ते आयात बिल का भी एक बड़ा हाथ है। 2012 में परिपक्व हो रहे 20 अरब डालर के विदेशी ऋण की अदायगी भी रूपये पर दबाव बना रही है।

माना जाता है कि विनिमय दर में भारी उथल–पुथल से बचाने के लिए देश का केन्द्रीय बैंक एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। लेकिन हाल ही में आई विदेशी मुद्रा बाजार में इस उथल–पुथल में भारतीय रिजर्व बैंक ने हाथ डालने से लगभग परहेज रखा हुआ है। रिजर्व बैंक का कहना है कि उसके द्वारा हस्तक्षेप से फायदे के बजाय नुकसान हो सकता है।

रूपये की कमजोरी का मतलब

देश की मुद्रा का कमजोर होना निर्यातकों के लिए तो वरदान हो सकता है, क्योंकि उनके लाभ काफी बढ़ जाते हैं, लेकिन महंगाई से पिसती जनता की मुश्किलें गिरते रूपये के कारण और बढ़ने वाली हैं। रूपये के कमजोर होने का मतलब है प्रत्येक डॉलर के लिए ज्यादा रूपये देना।

हर वर्ष देश को लगभग 2 लाख 50 करोड़ रूपये की विदेशी मुद्रा खनिज तेल के आयात पर खर्च करनी पड़ती है। इसका मतलब यह है कि पिछले एक वर्ष में रूपये के मूल्य में जो लगभग 25 प्रतिशत की कमी आई है, अब देश को 60 से 65 हजार करोड़ रूपये अतिरिक्त देने होंगे। यानि हमारा व्यापार घाटा और अधिक बढ़ जायेगा। यही नहीं पेट्रोलियम कंपनियां पेट्रोलियम उत्पादों की कीमतें और अधिक बढ़ा देंगी।

पहले से ही महंगाई की मार झेलते हुए आम आदमी को और अधिक पिसने के लिए तैयार रहना होगा। रूपये में गिरावट के फलस्वरूप आयातित उपभोक्ता वस्तुएं तो महंगी होंगी ही, उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चा माल, धातुएं इत्यादि भी महंगी हो जायेंगी।

हाल ही में जारी आंकड़ों के अनुसार पहले से ही महंगाई की मार झेलता हुआ औद्योगिक क्षेत्र लगातार गिरावट की ओर है। अप्रैल 2010 में औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर 14.5 प्रतिशत थी, जो जनवरी 2012 तक घट कर मात्र 1.1 प्रतिशत रह गई। लगातार घटता फैक्टरी उत्पादन देश के नीति निर्माताओं के लिये चिंता का विषय बना हुआ है। गिरते रूपये के चलते औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर और घट सकती है।

क्यों कमजोर हो रहा रूपया

यह विरोधाभास ही है कि उधर यूरोप की आर्थिक स्थिति बिगड़ रही है, और उधर हमारा रूपया कमजोर हो रहा है। जानकारों का कहना है कि अल्पकाल में ऐसा इसलिये हो रहा है क्योंकि अपने पैसे की सुरक्षा के मद्देनजर विदेशी संस्थागत निवेशकों को, अमेरिकी सरकार के बांड अधिक सुरक्षित दिखाई दे रहे हैं। कारण केवल यही नहीं है। पिछले कुछ समय से डालरों में हमारा आयात बिल अचानक ही बढ़ गया है।

आयात बिल बढ़ने के दो मुख्य कारण हैं – एक, कच्चे तेल की कीमत बढ़ना और दूसरा सोने और चांदी का आयात बढ़ना। कच्चे तेल की कीमत पिछले वर्ष से लगातार बढ़ती हुई अप्रैल, 2012 को 105 डॉलर प्रति बैलर के आस–पास पहुंच गई। इन हालातों में हमारा तेल आयात बिल वर्ष 2010–11 में 103 अरब डॉलर से बढ़कर 2011–12 में लगभग 150 अरब डॉलर तक पहुंच गया। पिछले वर्ष यानि 2011–12 में सोने चांदी का आयात 60 अरब डालर तक पहुंच गया, जो इससे पूर्व के वर्ष में इसके आधे से भी कम था।

मजबूत रूपया है फायदेमंद

हालांकि कई बार ऐसा कहा जाता है कि रूपये का अवमूल्यन होने से निर्यात बढ़ाये जा सकते हैं, और आयातों में कमी लायी जा सकती है।

लेकिन भारत का अनुभव यह बताता है कि चूंकि परंपरागत रूप से भारत के अधिकतर आयातों जैसे – कच्चे तेल, धातुओं इत्यादि को घटाया नहीं जा सकता और रूपये का अवमूल्यन करके हमारे निर्यातों को भी बढ़ाने की संभावना बहुत कम है, इसलिए रूपये का कमजोर होना देश के लिए अहितकारी है, क्योंकि इससे आवश्यक वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती है। इससे महंगाई तो बढ़ती ही है उद्योगों के लिए भी कच्चा माल महंगा होने के कारण उनका विकास अवरूद्ध होता है।

इसलिए रूपये का मजबूत होना ही देश के लिए मंगलकारी है, क्योंकि इससे महंगाई पर काबू पाया जा सकता है और रूपया मजबूत होने पर देश अपने ऋणों को रूपयों में लिया जा सकता है, जिसको विदेशी मुद्रा में चुकाने का बोझ भी घटेगा।

जरूरत गिरते रूपये को थामने की

दीर्घकाल में रूपये को मजबूत बनाना लाभकारी है ही, लेकिन फिलहाल देश के सामने बड़ी समस्या गिरते रूपये को थामने की है। इसके लिए सही नीतिगत उपाय अपनाने के लिए जरूरी है कि नीति निर्माता रूपये की कमजोरी का सही कारण समझें। यह सही है कि विदेशी संस्थागत निवेशकों को फिलहाल शेयर बाजारों में पैसा लगाने के बजाय अमेरिकी सरकार के बांडों में पैसा लगाना ज्यादा लाभकारी और सुरक्षित जान पड़ता है। इसलिए वे तेजी से भारत से डॉलर बाहर भेज रहे हैं। लेकिन रूपये के गिरने का मात्र यह कारण नहीं है।

पिछले कुछ समय से भारत के आयातों में भारी वृद्धि हुई है। विशेषतौर पर बड़ी मात्रा में पावर प्लांट, टेलिकॉम उपकरण, उपभोक्ता वस्तुएं, सोना और चांदी इत्यादि आयात की जा रही हैं। ऐसे में हमारा व्यापार घाटा भी बढ़ता जा रहा है।

वर्ष 2010–11 में व्यापार घाटा बढ़कर 130 अरब डॉलर तक पहुंच गया और 2011–12 में यह और अधिक 185 अरब डॉलर तक पहुंच गया।

हालांकि सॉफ्टवेयर निर्यातों में कोई विशेष गिरावट दर्ज नहीं हुई है, लेकिन एक ओर तो विदेशी संस्थागत निवेशक अतिरिक्त पैसा नहीं ला रहे, बल्कि पहले से निवेश किए हुए डॉलरों को भी बाहर भेज रहे हैं। इसलिए विदेशी संस्थागत निवेशक हालांकि रूपये की कमजोरी का एक मुख्य कारण हैं, लेकिन वे एकमात्र कारण नहीं है।

चीन से बढ़ते आयात भी हमारे व्यापार घाटे में खासी वृद्धि कर रहे हैं और चीन से होने वाले व्यापार का घाटा कुल घाटे का 20 प्रतिशत से भी अधिक है। चीन से बढ़ते आयात हमारे रूपये को ही कमजोर नहीं कर रहे, बल्कि हमारे उद्योगों के विकास को भी बाधित कर रहे हैं।

सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक के ये बयान कि इन परिस्थितियों में उनके पास सीमित विकल्प हैं, अत्यंत निराशाजनक एवं अपनी जिम्मेदारी से मुख मोड़ने जैसे हैं। सरकार का यह दायित्व बनता है कि देश के समक्ष कमजोर होते रूपये की चुनौती के मद्देनजर कुछ ठोस कदम उठाये। सबसे पहले आयातों और विशेषतौर पर चीन से बढ़ते आयातों पर प्रभावी रोक लगाई जाए। सुरक्षा सलाहकारों की सिफारिशों के आधार पर भी टैरिफ बढ़ा कर और स्वास्थ्य एवं सुरक्षा उपायों के आधार पर भी इन आयातों को रोका जा सकता है। बढ़ते तेल के आयात बिल के मद्देनजर सरकार को ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों जैसे सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, इत्यादि के प्रोत्साहन के लिए दीर्घकालीन उपाय करने होंगे।

यही नहीं विदेशी संस्थागत निवेशकों के लाभों पर टैक्स लगाया जाए और उनके द्वारा लाये गये निवेशों पर न्यूनतम तीन वर्ष की लॉक–इन शर्त लगायी जाए। ऐसे में विदेशी संस्थागत निवेशकों को अनुशासित करने में मदद मिलेगी। इस बाबत बजट 2012–13 में आयात शुल्क में वृद्धि करते हुए सोने के आयातों को थामने का प्रयास सराहनीय है। ❑

जल को निजी एकाधिकार में सौंपना अमानवीय

जल नीति प्रारूप 2012 में तो यहां तक कह दिया है कि जल को आर्थिक वस्तु मान कर उसका मूल्य निर्धारण, उससे अधिकतम लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर करना चाहिए। इस दृष्टि से जल नीति प्रारूप 2012 के प्रस्ताव अत्यंत चिंताजनक है। इस जल–नीति प्रारूप में जल को जीवन का आधार ठहराने के बाद जल को 'आर्थिक वस्तु' व्यापारिक वस्तु की श्रेणी में लाने के प्रयास गंभीर रूप से विचारणीय है. . .

■ भगवती प्रकाश

जल सम्पूर्ण जीव सृष्टि के लिए प्रकृति का अनमोल उपहार है। यह जीवन की अनिवार्य आवश्यकता होने के साथ–साथ खाद्य सुरक्षा का आधार एवं किसान के योगक्षेम का अवलम्बन है। इसलिए केन्द्र सरकार की नवीन जल नीति के सुझाए अनुसार जल संसाधनों को निजी एकाधिकार में सौंपकर, निजी सेवा प्रदाता को लाभार्जन की छूट देने की दशा में जल सामान्य व्यक्ति के लिए दुर्लभ व बहुसंख्य समाज के पोषण का माध्यम बन जाएगा।

जल संसाधनों के प्रबंध व वितरण के क्षेत्र में कार्यरत बहुराष्ट्रीय कंपनियों का अनुमान है कि जल संसाधनों का निजीकरण कर जल के कारोबार में विदेशी निवेश की छूट देने की दशा में 20 खरब डॉलर के उदीयमान व्यवसाय के अवसर उत्पन्न होंगे। केवल विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों की इन अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा हाल ही में प्रस्तावित 'राष्ट्रीय जल–नीति प्रारूप 2012 में, जल को आर्थिक वस्तु की श्रेणी में रखना प्रस्तावित किया है। साथ ही जल का मूल्य, लागत आधारित करते हुए जल के प्रबंध व वितरण में व्यापारिक एकाधिकार स्थापित करने की दिशा में आगे बढ़ाने के जो संकेत दिए हैं वे चिंताजनक है।

जल नीति प्रारूप 2012 में तो यहां तक कह दिया है कि जल को आर्थिक वस्तु मान कर उसका मूल्य निर्धारण, उससे अधिकतम लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर करना चाहिए। इस दृष्टि से जल नीति प्रारूप 2012 के प्रस्ताव अत्यंत चिंताजनक है। इस जल–नीति प्रारूप में जल को जीवन का आधार ठहराने के बाद जल को 'आर्थिक वस्तु' व्यापारिक वस्तु की श्रेणी में लाने के प्रयास गंभीर रूप से विचारणीय है।

विश्व में अनेक स्थानों पर पानी के निजीकरण के विरोध में जन–प्रदर्शन, सामाजिक अशांति और विरोध अभियानों की घटनाएँ बढ़ती देखी गई। अर्जेंटीना में जल के निजीकरण के विरोध में उपजे जन आक्रोश से निजी कंपनियों को भारी नुकसान, मेट्रो मनीला जलप्रदाय परियोजना से निजी कंपनी द्वारा हाथ खींच लेने को विवश होना, अटलांटा में पानी के अनुबंध पर संकट, कोलम्बिया, जकार्ता और अल आल्टो जैसी जगहों पर तीव्र सामाजिक प्रतिक्रियाएँ और दंगे आदि की भारत सरकार को अनदेखी नहीं करनी चाहिए।

जल के निजीकरण के विरूद्ध इस प्रकार की घटनाओं ने यह सिद्ध करना प्रारंभ कर दिया है कि पानी के क्षेत्र में कई विकसित और विकासशील देशों में निजी क्षेत्र की सहभागिता का मॉडल सफल नहीं हो सका है। निजीकरण के बाद अधिकांश स्थानों पर जल की कीमतों में भारी वृद्धि

हुई है, अनेक स्थानों पर जल की गुणवत्ता असंतोषजनक पायी गयी है और आम जनता शोषण का शिकार हुई है। अधिकांश स्थानों पर जहां भी निजी कंपनियों ने अनुबंध की शर्तों को पूरा नहीं किया था वहां उन्हें अनेक राजनैतिक और सामाजिक विरोध प्रदर्शनों का सामना करना पड़ा है। इसलिए भारत सरकार को जल नीति प्रारूप 2012 पर पुनर्विचार करना चाहिए।

इस प्रारूप के विवादास्पद बिन्दु निम्न हैं :–

(1) **अधिकतम लाभ प्राप्ति का उद्देश्यः** जल जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है, इससे अधिकतम लाभार्जन की वृत्ति से साधारण व्यक्ति का जीवन ही संकटापन्न हो जाएगा और किसान के लिए कृषि अनार्थिक होती चली जाएगी। जल नीति 2012 के बिन्दु क्रमांक 7.1 में कहा है कि ''जल को एक आर्थिक वस्तु के रूप में समझे जाने की आवश्यकता है और इसलिए इसका मूल्य जल उपयोग कुशलता को बढ़ावा देने एवं जल से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए उद्देश्य से निर्धारित किया जाना चाहिए। जहां जल के मूल्य पर प्रशासनिक नियंत्रण की पद्धति जारी रखनी पड़ सकती है, वहां जल मूल्य पर प्रशासनिक नियंत्रण अधिकाधिक आर्थिक सिद्धांतों के अनुसार होना चाहिए।

(2) **जल के मूल्य लागत आधारित होंः** प्रारूप के बिन्दु क्रमांक 7.2 में कहा गया है कि ''प्रत्येक राज्य में एक जल शुल्क प्रणाली स्थापित करने एवं जल प्रभार के लिए मानदण्ड निर्धारित करने के लिए एक तंत्र होना चाहिए जो कि इस सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए कि क्रॉस सब्सिडी, यदि कोई हो, को ध्यान में रखते हुए जल शुल्क में जल संसाधन के प्रशासन प्रचालन एवं रख–रखाव की लागत की पूर्ण वसूली शामिल हो।''

क्रास सब्सिडी – जिसके कारण कृषि के लिए जल के दाम व पेयजल सस्ता व वाणिज्यिक उपयोग के लिए महंगा होता है वह क्रास सब्सिडी भी शनैः शनैः कम होगी।

(3) **विद्युत व जल दोनों के शुल्क में वृद्धिः** जल नीति में कहा है कि विद्युत का मूल्य कम होने से जल व विद्युत दोनों का दुरूपयोग होता है। इसलिए विद्युत के दाम बढ़ाए जाएं। विशेष कर कृषि के लिए बिजली के दाम बढ़ाने का प्रस्ताव किया गया है। यथा – बिन्दु क्रमांक 7.5 में कहा है कि ''विद्युत का बहुत कम मूल्य निर्धारण करने से विद्युत एवं जल दोनों की बर्बादी होती है। इसे बदलने की जरूरत है।''

(4) **भू–गर्भ के जल पर भू–स्वामी के स्वत्व की समाप्ति का प्रस्तावः** सुखाधिकार अधिनियम 1882 के अधीन भूमि के गर्भ में उपलब्ध जल पर उस भूमि के स्वामी का स्वत्व होता है, उसे समाप्त किया जाए। यथा बिन्दु क्रमांक 22 में कहा है कि ''भारतीय सुखाधिकार अधिनियम 1882 में उस प्रावधान का संशोधन करना पड़ सकता है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह अधिनियम भूमि स्वामी को उसकी भूमि के अंतर्गत भूमि जल के लिए मालिकाना हक प्रदान करता है।''

(5) **निजीकरण करते हुए सरकार जल वितरण के काम से बाहर निकल जाए और यह केवल नियमन का ही कार्य करेः** यथा बिन्दु क्रमांक 13.4 में कहा है कि ''राज्य को 'सेवा प्रदाता' से सेवाओं के विनियामकों और व्यवस्थाधारकों की भूमिका में धीरे–धीरे हस्तांतरित होना चाहिए। जल संबंधी सेवाओं को समुचित ''सार्वजनिक निजी भागीदारी' के उचित प्रारूप के अनुसार समुदाय तथा/अथवा निजी क्षेत्र को हस्तांतरित किया जाना चाहिए।

(6) **जल प्रदाय के कार्य संबंधी**

निर्णय स्वायत्त अधिकृति करेः जल की कीमत निर्धारण, वितरण विविध कार्यों के लिए मात्रा का आवंटन आदि का प्रशासन प्रदेशों में एक स्वायत्त जल नियामक अधिकृति करे, जिसका स्वतंत्र कानून हो (वर्तमान में सरकारें जन दबाव के कारण जल का दाम बढ़ा नहीं सकती है। स्वायत्त अधिकृति ऐसे जन दबाव व सरकारी नियंत्रण से मुक्त रहेगी, जिससे वह जल सेवा प्रदाता (निजी कंपनी) के लिए लागत व उचित प्रतिफल–युक्त मूल्य निर्धारित कर सके।

इस हेतु विश्व बैंक व एशिया डवलपमेंट बैंक की शर्तों पर अनेक देशों में ऐसी अधिकृतियां बनी है। देश में भी जहां–जहां विश्व बैंक व एशियाई विकास बैंक से ऋण लेकर उनके जल क्षेत्र सुधार लागू किए हैं, वहां ऐसी अधिकृति का कानून बना है। यथा जल नीति प्रारूप के बिन्दु क्रमांक 13.1 में कहा है कि ''प्रत्येक राज्य में एक जल विनियमन प्राधिकरण की स्थापना की जानी चाहिए। प्राधिकरण अन्य बातों के साथ–साथ इस नीति में उल्लिखित नियमों के अनुसार सामान्यतः स्वायत्त ढंग से जल शुल्क प्रणाली तथा प्रभारों का निर्धारण और विनियमन करना चाहिए। प्राधिकरण को शुल्क प्रणाली के अलावा आवंटन का विनियमन करने, निगरानी प्रचालन करने, निष्पादन की समीक्षा करने तथा नीति में परिवर्तन करने संबंधी सुझाव इत्यादि देने जैसे कार्य भी करने चाहिए। राज्य में जल विनियमन प्राधिकरण को अंतः राज्यीय जल संबंधी विवादों का समाधान करने में भी सहयोग देना चाहिए।

जल के क्षेत्र में व्यापारिक कंपनियां प्रवेश करती हैं और वे लागत व लाभ वसूल करेंगी और लागत आधारित मॉडल पर यदि आंशिक सामुदायिक (जल प्रयोक्ता संघ के) स्वामित्व के आधार पर भी सार्वजनिक व निजी भागीदारी प्रारंभ होती है तो जल के दाम बहुत बढ़ जाएंगे। आरंभ में निजीकरण हेतु विश्व बैंक, एशियाई बैंक सहायता देते हैं, जिससे कुछ समय दाम नहीं बढ़ते हैं लेकिन विश्व में शनैः शनैः यह सहायता बंद होने पर जल के दाम, लागत व लाभ आधारित होते ही बढ़ते चले गए हैं।

यदि जल के क्षेत्र में व्यापारिक कंपनियां प्रवेश करती हैं और वे लागत व लाभ वसूल करेंगी और लागत आधारित मॉडल पर यदि आंशिक सामुदायिक (जल प्रयोक्ता संघ के) स्वामित्व के आधार पर भी सार्वजनिक व निजी भागीदारी प्रारंभ होती है तो जल के दाम बहुत बढ़ जाएंगे। आरंभ में निजीकरण हेतु विश्व बैंक, एशियाई बैंक सहायता देते हैं, जिससे कुछ समय दाम नहीं बढ़ते हैं लेकिन विश्व में शनैः शनैः यह सहायता बंद होने पर जल के दाम, लागत व लाभ आधारित होते ही बढ़ते चले गए हैं।

इस पब्लिक प्राइवेट मॉडल के अंतर्गत बिल वितरण, नए कनेक्शन देने आदि का काम किसी जल प्रयोक्ता संघ या सामुदायिक संगठन को सौंपा जा सकता है एवं सम्पूर्ण जल संग्रह व वितरण की आधारिक रचनाओं को किसी बड़ी विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनी को सौंप दिया जाता है। विश्व भर में 10–12 ही बड़ी यूरो–अमरीकी कंपनियां हैं जो इस सार्वजनिक निजी भागीदारी के मॉडल से विश्व भर की अधिकांश जल संबंधी आधारिक रचनाओं को नियंत्रित करती जा रही है। इस दृष्टि से बिन्दु क्रमांक 7.4 में कहा कि ''जल प्रयोक्ता संघों को जल शुल्क एकत्रित करने एवं एक हिस्सा रखने, उन्हें आवंटित जल की मात्रा का प्रबंधन करने और उनके अधिकार क्षेत्र में वितरण प्रणाली के रखरखाव के लिए वैधानिक शक्तियां दी जानी चाहिए।

जल के निजीकरण के संबंध में विश्व बैंक ने योजनापूर्वक जलापूर्ति, चिकित्सा व शिक्षा जैसी जन–उपयोगिताओं के लिए नागरिक आधारिक रचनाएं (civic-infrastructure) शब्द प्रयोग आरंभ कर दिया है। साथ ही यह कहना प्रारंभ कर दिया है कि इन्हें बाजार आधारित किया जाए। अर्थात् इन पर अनुदान के स्थान पर लागत व लाभ के आधार मूल्य निर्धारण हो

(Market based instrument should be involved in civic-infrastructure)। जिसका आशय है कि जलापूर्ति, शिक्षा व चिकित्सा में लाभ युक्त लागत के आधार पर मूल्य निर्धारण प्रारंभ कर इनका निजीकरण व इनमें विदेशी निवेश खोलना चाहिए। इन तीन सेवाओं के निजीकरण व इनमें विदेशी पूंजी निवेश खोलने पर ऐसी कंपनियां 100 खरब डॉलर के लाभकारी कारोबार की आशा संजोए हुए हैं।

उक्त प्रस्तावों का हेतु व परिणाम

अंतराष्ट्रीय प्रेक्षकों का अनुमान है कि विकाशील देशों द्वारा जल वितरण व निजीकरण करने, उसमें लागत सहित लाभ वसूल करने की छूट देने व जल वितरण में विदेशी पूंजी निवेश की छूट देने पर जल के क्षेत्र में 20 खरब डॉलर के उदीयमान कारोबार के अवसर उत्पन्न होंगे। वर्तमान में विश्वभर में जल के क्षेत्र में स्वेज, विवेण्डी, डेग्रेमोण्ट, वेक्टेल जैसी भी कंपनियों का अतिपत्य है।

यदि सिंचाई के लिए जल व विद्युत के दाम लागत आधारित हो गए तो किसान के लिए खेती अनार्थिक हो जाने से बहुसंख्य किसान, अपनी भूमि पर, विदेशी कंपनियों के लिए ठेके पर खेती (Contract Farming) के लिए विवश होंगे। विदेशों से आयातित उच्च अनुदान (Subsidy) वाले सस्ते कृषि उत्पादों से स्पर्द्धा के कारण किसान के लिए खेती अलामकारी हो जाएगी। भारत के पास विश्व की सर्वाधिक कृषि योग्य भूमि व सर्वाधिक सिंचित भूमि होने से, विश्व भर की खाद्य व कृषि उत्पाद कंपनियां (Farming Companies) अनुबंधित कृषि के माध्यम से किसानों से उनकी जमीन ठेके पर खेती के लिए प्राप्त करना चाहती है। उदाहरणतः कारगिल नामक अमरीकी कंपनी अपने 'नेचर फ्रेश' नामक आटे के लिए 6000 हेक्टेयर भूमि पर अपने बीज देकर खेती करवा रही है और अपने ही आटा मिल से आटा पीस कर देश में बेच रही है। इस प्रकार 'खेत–खलिहान से किचन' तक समग्र आपूर्ति शृंखला अपने हाथ में लेने की ओर बढ़ रही है। हिन्दुस्तान यूनी लीवर ऐसे ही टमाटर व आलू की खेती करवा रही है।

अभी तक देश में प्रमुख स्थानों पर जहां भी जलापूर्ति का निजीकरण हुआ है अनेक स्थानों पर स्वेज, बेक्टेल, डेग्रमॉण्ड जैसी विदेशी कंपनियों ने निवेश किया है। उदाहरणतः तिरूपुर में यूएस एड व विश्व बैंक की सहायता से लागू योजना में वेक्टेल के साथ 30 वर्ष का अनुबंध है। नयी दिल्ली में डेग्रेमॉण्ट कंपनी के साथ 10 वर्ष का अनुबंध है। इसके अतिरिक्त ऐसे सभी मामलों में निजी कंपनी को लाभ की पूरी गारंटी है।

अभी तक देश में प्रमुख स्थानों पर जहां भी जलापूर्ति का निजीकरण हुआ है अनेक स्थानों पर स्वेज, बेक्टेल, डेग्रमॉण्ड जैसी विदेशी कंपनियों ने निवेश किया है। उदाहरणतः तिरूपुर में यूएस एड व विश्व बैंक की सहायता से लागू योजना में वेक्टेल के साथ 30 वर्ष का अनुबंध है। नयी दिल्ली में डेग्रेमॉण्ट कंपनी के साथ 10 वर्ष का अनुबंध है। इसके अतिरिक्त ऐसे सभी मामलों में निजी कंपनी को लाभ की पूरी गारंटी है। उसकी हानि की पूर्ति सरकार या स्थानीय निगम उसके कर राजस्व में से करेंगे। जल वितरण में स्पर्द्धा के अभाव में उनकी कुशलता का कोई प्रमाण नहीं रह जाता है। निजी कंपनी अपने अनुबंध में यह भी शर्त रखती है कि वहां जल वितरण की कोई समानान्तर व्यवस्था नहीं संचालित की जा सकेगी।

अन्य देशों में जहां भी लेटिन अमेरिका व अफ्रीका आदि में जल का निजीकरण हुआ है, वहां लोग उन विदेशी कंपनियों से ही जल क्रय करें, इस हेतु अधिकांश स्थानों पर नागरिकों को जल हेतु अपनी जमीन में भी कुए खोद कर पानी निकालने के अधिकार से वंचित कर दिया है। बॉलिविया में तो छत के जल को संग्रहित करने के लिए भी इटालवी अंतर्राष्ट्रीय जल कंपनी व अमरीकी बेक्टेल ने परमिट प्रणाली लागू की है। भारत के जल नीति प्रारूप में सुखाधिकार अधिनियम 1882 में संशोधित कर किसान से उसकी भूमि में कुआँ खोदने का अधिकार छीनने का प्रस्ताव उन्हीं कई देशों की याद दिलाता है, जहां विदेशी जल कंपनियों को एकाधिकार दिलाने के लिए नागरिकों को अपनी भूमि में से कुआं खोद कर पानी निकालने के अधिकार से वंचित कर दिया है। सर्वत्र, किसी भी प्रकार की समानान्तर जलापूर्ति की व्यवस्था पर रोक होने से जनता के जल स्रोतों पर एक ही कंपनी का एकाधिकार हो जाता है। सभी स्थानों पर निजी सेवा प्रदाता से होने वाले समझौते में किसी भी प्रकार की प्रतिस्पर्द्धी सेवा का निषेध होता है। कई अनुबंधों में सार्वजनिक नलकूपों के गहरा करने पर निषेध होता है।

वस्तुतः जल को लाभार्जन का माध्यम बना देने से आम व्यक्ति के लिए जल उत्तरोत्तर दुर्लभ होता चला जाएगा और किसान के लिए खेती करना कठिन होता चला जाएगा। दूसरी ओर जल पर एकाधिकारवश निजी सेवा प्रदाता की 10–30 वर्ष तक की अनुबंध अवधि में असीम लार्भाजन का एकाधिकार प्राप्त हो जाएगा। ❑

असफल आर्थिक मॉडल

डॉ. मनमोहन सिंह ने सोचा था कि बड़ी कंपनियों के कंधे पर चढ़कर वह निवेश, विकास दर और निर्यात बढ़ाएंगे, पर हो रहा है इसका ठीक उलटा। आम आदमी पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव से मनमोहन सिंह अनभिज्ञ हैं अथवा अनभिज्ञ रहना चाहते हैं। मनमोहन सिंह की पॉलिसी उसी प्रकार है जैसे जमींदार को सब्सिडी देकर सोचा जाए कि बंधुआ मजदूर की स्थिति में सुधार होगा अथवा बरगद के पेड़ को पानी देकर आशा की जाए कि उसकी छांव में पौधे पनपेंगे. . .

■ **डॉ. भरतझुनझुनवाला**

वैश्विक रेटिंग एजेंसी 'स्टैंडर्ड एंड पुअर्स' ने भारत की रेटिंग पर नजरिया स्थिर से नकारात्मक कर दिया है। रेटिंग संस्थाएं बाजार में उपलब्ध बांड की विश्वसनीयता का आकलन करती हैं।

रेटिंग संस्था आकलन करती है कि कंपनी के लाभ कितने हैं, उसी क्षेत्र में कार्यरत दूसरी कंपनियों की तुलना में इस कंपनी की वित्तीय स्थिति कैसी है, जिस क्षेत्र में कंपनी कार्यरत है, उसका भविष्य कैसा है इत्यादि।

संस्था द्वारा बताई गई रेटिंग के आधार पर निवेश करना आसान हो जाता है, क्योंकि संस्था के पास तमाम जानकारी होती है, जो निवेशक को उपलब्ध नहीं होती। पहले 'स्टैंडर्ड एंड पुअर्स' का नजरिया सकारात्मक था यानी आने वाले समय में संस्था को अर्थव्यवस्था में सुधार की आशा थी। अब अर्थव्यवस्था में गिरावट की आशंका है इसलिए रेटिंग को बीबीबी–माइनस लिखा जा रहा है। नजरिये के नकारात्मक होने का उतना ही दुष्प्रभाव पड़ेगा जितना रेटिंग घटाने का।

डूबते जहाज पर व्यापारी अपना माल नहीं लादता तो फिर डूबती अर्थव्यवस्था पर निवेशक अपनी पूंजी क्यों लगाएंगे? स्टैंडर्ड एंड पुअर्स ने नजरिया नकारात्मक करने के चार कारण बताए हैं – निवेश में गिरावट, विकास दर में गिरावट, व्यापार घाटे में वृद्धि एवं राजनीतिक अस्थिरता।

मेरी समझ में ये चारों कारण मनमोहन सिंह द्वारा लागू किए गए विकास के विकृत मॉडल से उत्पन्न हुए हैं। मनमोहन सिंह की सोच में बड़ी कंपनियों का वर्चस्व सर्वोपरि है। वह समझते हैं कि बड़ी कंपनियां भारी मात्रा में निवेश करेंगी। इससे निवेश बढ़ेगा। यह निवेश आधुनिक पूंजी सघन उद्योग में किया जाएगा। कंपनियों द्वारा सस्ता माल बनाया जाएगा। इससे विकास दर बढ़ेगी। सस्ते माल का निर्यात करके भारत विश्व अर्थव्यवस्था में अपना स्थान बनाएगा। इससे व्यापार घाटा

मनमोहन सिंह की सोच में बड़ी कंपनियों का वर्चस्व सर्वोपरि है। वह समझते हैं कि बड़ी कंपनियां भारी मात्रा में निवेश करेंगी। इससे निवेश बढ़ेगा। यह निवेश आधुनिक पूंजी सघन उद्योग में किया जाएगा। कंपनियों द्वारा सस्ता माल बनाया जाएगा। इससे विकास दर बढ़ेगी। सस्ते माल का निर्यात करके भारत विश्व अर्थव्यवस्था में अपना स्थान बनाएगा। इससे व्यापार घाटा नियंत्रण में आएगा।

नियंत्रण में आएगा। कंपनियों को भारी लाभ होगा। इस लाभ के एक अंश को भारत की सरकार द्वारा टैक्स के रूप में वसूला जाएगा। टैक्स की इस वसूली से सरकार का वित्तीय घाटा नियंत्रण में आएगा। टैक्स की इस रकम के एक हिस्से से मनरेगा जैसे लोक कल्याणकारी कार्यक्रम चलाए जाएंगे। इससे राजनीतिक स्थिरता स्थापित होगी। इस प्रकार निवेश, आर्थिक विकास, व्यापार घाटा एवं राजनीतिक स्थिति, सभी ठीक हो जाएंगे। इस मॉडल के तहत मनमोहन सिंह ने खुदरा बिक्री में बहुराष्ट्रीय कंपनियों को प्रवेश देने की वकालत की थी।

ऋषिकेश के बस स्टैंड पर चार वर्ष पूर्व ठेले पर चना बेचने वाले से बातचीत हुई थी। वह घर से चना भूनकर लाता था। उसने बताया कि बड़ी कंपनियों द्वारा पैक किए गए नमकीन से उसके सामने प्रतिस्पर्धा कठिन हो रही है। हाल में मैं बस स्टैंड गया तो उसका ठेला नदारद था। धंधे की मार खाकर वह भी मनरेगा की शरण चला गया होगा। ऐसी ही हालत देश के करोड़ों बुनकरों की हो गई है।

मनमोहन सिंह का यह आर्थिक मॉडल असफल है, क्योंकि बड़ी कंपनियों द्वारा पूंजी–सघन उत्पादन का आम आदमी पर भयंकर दुष्प्रभाव पड़ता है, जिसे मनरेगा जैसे कार्यक्रम से थामना संभव नहीं है। यूं समझें कि दूधवाला प्रतिदिन शहर दूध बेचने जाता है। वह साल के 365 दिन 250 रुपये कमाता है। मोटर साइकिल से आता–जाता है। ऐसे में बड़ी कंपनी द्वारा सस्ता दूध बाजार में पेश किया जाता है। दूधवाले का धंधा बंद हो जाता है। अब उसे मनरेगा में 125 रुपये की दर से 100 दिन का रोजगार मिलता है। उसके जीवनस्तर में गिरावट आती है। एक ओर जहां गरीबतम बेरोजगारों को मनरेगा से रोजगार मिल रहा है वहीं करोड़ों लोगों के रोजगार के हनन से भयंकर असंतोष भी उत्पन्न हो रहा है।

ऋषिकेश के बस स्टैंड पर चार वर्ष पूर्व ठेले पर चना बेचने वाले से बातचीत हुई थी। वह घर से चना भूनकर लाता था। उसने बताया कि बड़ी कंपनियों द्वारा पैक किए गए नमकीन से उसके सामने प्रतिस्पर्धा कठिन हो रही है। हाल में मैं बस स्टैंड गया तो उसका ठेला नदारद था। धंधे की मार खाकर वह भी मनरेगा की शरण चला गया होगा। ऐसी ही हालत देश के करोड़ों बुनकरों की हो गई है।

मनमोहन सिंह की चली तो नुक्कड़ की खुदरा बिक्री की दुकान की भी यही गति होगी। आम आदमी की दुर्गति को संभालने के लिए मनमोहन सिंह ने लोन माफी एवं मनरेगा जैसे कार्यक्रम में खर्च बढ़ाया है। डीजल, खाद्य एवं खाद सब्सिडी घटाना भी संभव नहीं हो रहा है इसलिए सरकार का वित्तीय घाटा बढ़ रहा है। कंपनियों द्वारा दिए गए टैक्स में जितनी वृद्धि हो रही है, उससे ज्यादा मनरेगा, सब्सिडी आदि में खर्च बढ़ रहे हैं।

मनमोहन सिंह की चली तो नुक्कड़ की खुदरा बिक्री की दुकान की भी यही गति होगी। आम आदमी की दुर्गति को संभालने के लिए मनमोहन सिंह ने लोन माफी एवं मनरेगा जैसे कार्यक्रम में खर्च बढ़ाया है। डीजल, खाद्य एवं खाद सब्सिडी घटाना भी संभव नहीं हो रहा है इसलिए सरकार का वित्तीय घाटा बढ़ रहा है। कंपनियों द्वारा दिए गए टैक्स में जितनी वृद्धि हो रही है, उससे ज्यादा मनरेगा, सब्सिडी आदि में खर्च बढ़ रहे हैं। इस वित्तीय घाटे की भरपाई के लिए सरकार रिजर्व बैंक से ऋण ले रही है। रिजर्व बैंक ने नोट छापने के प्रेस की रफ्तार बढ़ा दी है। फलस्वरूप महंगाई बढ़ रही है।

खुदरा बिक्री में विदेशी कंपनियों को प्रवेश देने, तीस्ता नदी के पानी के बंटवारे तथा रेल किराए में वृद्धि की योजनाओं पर ममता बनर्जी से पहले सहमति नहीं ली गई। आम आदमी के उद्वेलन के कारण ममता बनर्जी नहीं हिलीं, जो कि ठीक ही था। स्टैंडर्ड एंड पुअर्स द्वारा नजरिया नकारात्मक किया जाना मनमोहन सिंह के चिंतन का तार्किक परिणाम है।

कंपनियों के बोर्ड में खतरे की घंटी बजने लगी है। उन्हें दिखने लगता है कि आज लिए गए ऋण की भरपाई करने के लिए कल सरकार को भारी मात्रा में टैक्स वसूल करना पड़ेगा और भविष्य में उनके लाभ कम होंगे। इससे निवेश कम हो रहा है। निवेश में कमी से सस्ते माल का उत्पादन नहीं हो रहा है और देश का निर्यात दबाव में है। व्यापार घाटा बढ़ रहा है और रुपया टूट रहा है।

मनमोहन सिंह ने सोचा था कि बड़ी कंपनियों के कंधे पर चढ़कर वह निवेश, विकास दर और निर्यात बढ़ाएंगे, पर हो रहा है इसका ठीक उलटा। आम आदमी पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव से मनमोहन सिंह अनभिज्ञ हैं अथवा अनभिज्ञ रहना चाहते हैं। मनमोहन सिंह की पॉलिसी उसी प्रकार है जैसे जमींदार को सब्सिडी देकर सोचा जाए कि बंधुआ मजदूर की स्थिति में सुधार होगा अथवा बरगद के पेड़ को पानी देकर आशा की जाए कि उसकी छांव में पौधे पनपेंगे अथवा गली के गुंडे को तमंचा देकर विश्वास किया जाए कि मोहल्ले में सुख–शांति होगी।

इसी प्रकार रोजगार भक्षण करने वाले पूंजी–सघन निवेश को प्रोत्साहन देकर आम आदमी की स्थिति में सुधार की अपेक्षा करना गलत है। बड़ी कंपनियों के आतंक से आम आदमी परेशान है और राजनीतिक अस्थिरता ने पैठ बना ली है। ऊपर से अहंकार ने स्थिति को बिगाड़ दिया है।

खुदरा बिक्री में विदेशी कंपनियों को प्रवेश देने, तीस्ता नदी के पानी के बंटवारे तथा रेल किराए में वृद्धि की योजनाओं पर ममता बनर्जी से पहले सहमति नहीं ली गई। आम आदमी के उद्वेलन के कारण ममता बनर्जी नहीं हिलीं, जो कि ठीक ही था। स्टैंडर्ड एंड पुअर्स द्वारा नजरिया नकारात्मक किया जाना मनमोहन सिंह के चिंतन का तार्किक परिणाम है।

स्पष्ट करना चाहूंगा कि भाजपा द्वारा भी यही मॉडल अपनाया गया है। भाजपा का दावा है कि इस मॉडल को वह ज्यादा ईमानदारी से लागू कर सकेगी। देश की दूसरी पार्टियों को कांग्रेस–भाजपा के इस दुश्चिंतन से हटकर सोचना पड़ेगा अन्यथा भारत की अर्थव्यवस्था के फिसलने की आशंका बढ़ती जा रही है। ❑

:: सूचना ::

स्वदेशी पत्रिका सम्राज्यवाद के खिलाफ एक सशक्त आवाज है। पत्रिका को ऐसे लोगों से प्रतिक्रियाएं, रिपोर्ट या आलेख की अपेक्षा है जो राष्ट्रहित में सोचते हैं और देश के स्वावलम्बन के लिए कुछ करने की इच्छा रखते है। जरूरी नहीं कि आप पत्रकार या लेखक ही हों, अपने आसपास से जुड़ी चीजों के प्रति आपकी संवदेना है और आप शब्दों में उसे लिख सकते है तो हमें अवश्य लिख भेजें। साथ ही स्वदेशी पत्रिका में छपे लेख आपको कैसे लगते हैं, क्या आप इसमें कुछ नए विषयों का समायोजन चाहते हैं कृपया हमें अवश्य अवगत कराएं। आपके विचारों को हम प्राथमिकता के साथ प्रकाशित करने का भी प्रयास करेंगे।

हमारा पता है :–

संपादक

स्वदेशी पत्रिका

'धर्मक्षेत्र', सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

कोमा में तो नहीं पर बेहोश जरूर है

रिजर्व बैंक ने हाल में एक रिपोर्ट में चिंता व्यक्त की थी भविष्य में महंगाई का दबाव बढ़ सकता है। यानी तमाम कारक चिंताएं बढ़ाने वाले हैं। पर इसका मतलब यह कतई नहीं है कि भारतीय अर्थव्यवस्था डूबने वाली है। देखा जाए तो हमारी अर्थव्यवस्था ने इससे भी ज्यादा खराब दिन देखे हैं। बहुत से सकारात्मक कारक भी हैं भारतीय अर्थव्यवस्था के पक्ष में। सात प्रतिशत के विकास का आंकड़ा दस प्रतिशत के संभावित विकास के आंकड़े से कम भले हो, पर यह उस स्तर का भी नहीं है कि भारत एकदम से अमेरिका टाइप मंदी में चला जाएगा।

■ आलोक पुराणिक

अमेरिकन क्रेडिट रेटिंग एजेंसी 'स्टैंर्डड एंड पुअर्स' यानी एसएंडपी ने भारतीय अर्थव्यवस्था की रेटिंग गिरा कर उस स्तर पर कर दी है, जहां से नीचे जाने पर इसमें निवेश को खतरनाक माना जायेगा। मसला चिंता है, पर कितनी चिंता का, यह सवाल ज्यादा महत्वपूर्ण है। स्टैंर्डड एंड पुअर्स की सारी बातें हमेशा सही साबित हुई हों, ऐसा कतई नहीं है पर उसकी सारी बातें गलत ही साबित हुई हों, यह भी नहीं माना जा सकता।

कुल मिलाकर एसएंडपी ने चेताया है कि भारतीय अर्थव्यवस्था की हालत बहुत अच्छी नहीं है और इसमें सुधार की सख्त की जरूरत है। नीति निर्धारकों को सिर्फ इसका अस्तित्व बचाने के बजाय कुछ विकासपरक मुद्दों पर विचार करना चाहिए। ज्यादा पुरानी बात नहीं है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में दस प्रतिशत की विकास दर की बात बहुत नियमितता से कही जा रही थी। अब यह घटकर सात प्रतिशत के करीब आ गयी है। यह बहुत बड़ा मसला है।

ग्लोबल विवशताएं अपनी जगह हैं पर सिर्फ ग्लोबल विवशताएं ही सब कुछ नहीं होती हैं। किसी भी राष्ट्र का एक अर्थ होता है और उस राष्ट्र चलाने वालों की भी कुछ जिम्मेदारी उसके प्रति होती है। इस अर्थ में देखा जाए तो यह रेटिंग अर्थव्यवस्था के लिए नहीं, बल्कि अर्थव्यवस्था चलाने वालों के लिए चेतावनी है क्योंकि उनके सामने साफ नहीं है कि क्या होना है और क्या करना है! राजनीतिक अस्तित्व बचाना इतना ज्यादा बड़ा काम हो गया है। किसी अन्य गंभीर गतिविधि के लिए समय और ऊर्जा का सख्त अभाव दिखायी देता है। फिलहाल जो आंकड़े सामने हैं, वे सकारात्मक नहीं, बल्कि नकारात्मकता की ओर इशारा करते हैं।

सेंटर फॉर मॉनीटरिंग इंडियन इकोनॉमी के आकलन के मुताबिक 2011–12 के लिए पहले विकास का आकलन किया गया था कि वह 8.6 प्रतिशत की दर से होगा लेकिन इसके अब 8.1 प्रतिशत से ज्यादा होने के

कुल मिलाकर एसएंडपी ने चेताया है कि भारतीय अर्थव्यवस्था की हालत बहुत अच्छी नहीं है और इसमें सुधार की सख्त की जरूरत है। नीति निर्धारकों को सिर्फ इसका अस्तित्व बचाने के बजाय कुछ विकासपरक मुद्दों पर विचार करना चाहिए। ज्यादा पुरानी बात नहीं है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में दस प्रतिशत की विकास दर की बात बहुत नियमितता से कही जा रही थी। अब यह घटकर सात प्रतिशत के करीब आ गयी है।

आसार नहीं हैं। कृषि क्षेत्र का विकास 3.2 प्रतिशत की दर से संभावित था, इसे भी घटाकर 2.2 प्रतिशत किया गया है। औद्योगिक क्षेत्र का विकास 8.9 प्रतिशत की दर से संभावित था, यह घटाकर 8.6 प्रतिशत किया गया है। सेवा क्षेत्र का विकास संभावित था कि 9.9 प्रतिशत की दर से होगा, लेकिन इसके आकलन को घटाकर 9.4 प्रतिशत किया गया है। यानी अर्थव्यवस्था उठान की तरफ नहीं बल्कि गिरावट की तरफ है, फिर भी उसकी विकास दरों को इतना खराब नहीं बताया जा सकता है कि वह एकदम ध्वस्त हो जायेगी।

एसएंडपी किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को पांच कारकों पर विश्लेषित करता है :–

(1) राजनीतिक कारक या राजनीतिक जोखिम।

(2) आर्थिक ढांचे का विश्लेषण।

(3) बाहरी तरलता यानी विदेशों से आने वाली धनराशि।

(4) राजकोषीय स्थिति यानी सरकारी खर्च।

(5) यानी मौद्रिक स्थिति यानी रिजर्व बैंक की गतिविधियां।

उक्त पांचों कारकों का विश्लेषण करें, तो साफ होता है कि स्थिति पहले से बेहतर नहीं है। राजनीतिक कारक जैसे हैं, वो सबके सामने हैं। सरकार में शामिल सहयोगी पार्टियां ऐसे सलूक कर रही हैं, जैसे विपक्ष में हों। ममता बनर्जी बजट प्रक्रिया के दौरान ही रेल मंत्री बदलवा देती हैं और लगभग रोज धमकी देती हैं।

शरद पवार महत्वपूर्ण राजनीतिक फैसलों पर विरोध करते हुए चिठ्ठी लिखते हैं। यूपी के चुनावों में कांग्रेस की गति देखकर साफ होता है कि केंद्र सरकार पर गठबंधन के दबाव ज्यादा पड़ेंगे। गठबंधन का एक असर तमाम नीतिगत फैसलों पर पड़ता है। पॉलिसी पैरालसिस यानी नीतिगत अपंगता, इसकी उपज है।

वित्त मंत्री साफ तौर पर कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं हैं कि ऐसा हो जायेगा या ऐसा नहीं। अपनी ही सहयोगी पार्टियों के नेता क्या कह देंगे, क्या कर देंगे, कुछ नहीं पता। एसएंडपी ने अगर राजनीतिक कारकों को नकारात्मक माना है तो इसे नापसंद भले ही किया जाये, पर सच्चाई यही है कि मौजूदा दौर में केंद्र की राजनीति का मालिक भगवान भी नहीं है।

कारक नंबर दो यानी आर्थिक ढांचे के मसले भी लगातार चिंतनीय हो रहे हैं। अर्थव्यवस्था का ढांचा बता रहा है कि विकास की रफ्तार पूरी अर्थव्यवस्था में एक सी नहीं है। नक्सलियों द्वारा अपहरण की घटनाएं लगातार बढ़ रही हैं। इसका एक सिरा कहीं न कहीं आर्थिक ढांचे से जुड़ता है। एक बड़े इलाके की अर्थव्यवस्था का विकास दूसरी ओर पतनोन्मुख है। किसान आत्महत्याएं कर रहे हैं। खेती से रिटर्न कम हो रहे हैं। विकास के लिए ऊपर से फंड चलते हैं लेकिन नीचे तक नहीं पहुंच पा रहे हैं।

ये मसले आर्थिक ढांचे से जुड़ते हैं। दुखद यह है कि आर्थिक ढांचे पर इस समय कोई बात तक नहीं कर रहा है। कारक नंबर तीन बाहर से आने वाली तरलता का है। निर्यात और आयात का संतुलन गड़बड़ाया हुआ है। व्यापार घाटा लगातार चिंता पैदा कर रहा है। अमेरिका और यूरोप की मंदी पूरे तौर पर खत्म नहीं हुई है।

अर्थव्यवस्था का ढांचा बता रहा है कि विकास की रफ्तार पूरी अर्थव्यवस्था में एक सी नहीं है। नक्सलियों द्वारा अपहरण की घटनाएं लगातार बढ़ रही हैं। इसका एक सिरा कहीं न कहीं आर्थिक ढांचे से जुड़ता है। एक बड़े इलाके की अर्थव्यवस्था का विकास दूसरी ओर पतनोन्मुख है। किसान आत्महत्याएं कर रहे हैं। खेती से रिटर्न कम हो रहे हैं। विकास के लिए ऊपर से फंड चलते हैं लेकिन नीचे तक नहीं पहुंच पा रहे हैं।

सॉफ्टवेयर उद्योग यूं पहले के मुकाबले बेहतर स्थिति में है पर सॉफ्टवेयर उद्योग की चिंताएं अभी बनी हुई हैं। विदेशी मुद्रा कोष करीब 293 अरब डॉलर का है। यह बहुत मजबूत स्थिति नहीं है। अंतराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल के भाव के बढ़ने के बाद यह कहां तक जाएगा, कुछ नहीं कहा जा सकता और कच्चे तेल के भाव भविष्य में बढ़ सकते हैं। तेल के भाव बढ़ने का सीधा असर भारत के विदेशी मुद्राकोष पर पड़ेगा।

दनादन कारें लांच हो रही हैं, बिक रही हैं। उनके लिए पेट्रोल, डीजल भी चाहिए। जिसे बड़ी मात्रा में आयात करना पड़ता है। जिन देशों से यह आता है, वहां की मारकाट का असर इन भावों पर क्या पड़ेगा, कोई नहीं जानता। अनिश्चितता के चलते समस्याएं बढ़ने की आशंका है।

कारक नंबर चार के रूप में राजकोषीय घाटा बहुत महत्वपूर्ण है। 2011—12 के लिए उम्मीद थी कि राजकोषीय घाटे को सकल घरेलू उत्पाद के 4.6 प्रतिशत तक सीमित किया जायेगा पर ऐसा नहीं हो पाया और यह 5.9 प्रतिशत के आसपास हुआ। 2012—13 में भी हालात बेहतर होने के आसार नहीं दिख रहे हैं। डीजल के भावों में बढ़ोत्तरी से एक हद तक राजकोषीय घाटा कम हो सकता था पर वह बढ़ोत्तरी कब और कैसे होगी, कुछ साफ नहीं है।

रिजर्व बैंक लगातार चिंता व्यक्त करता रहा है कि महंगाई को कम किये जाने की जरूरत है। महंगाई को कम करने के लिए रिजर्व बैंक के पास अपने औजार हैं पर वे कारगर साबित नहीं हो रहे हैं। कुल मिलाकर स्थिति यही साफ होती है कि रिजर्व बैंक के पास कुछ नया और ठोस कदम नहीं है, जिसके जरिये महंगाई को कम किया जा सके।

राजकोषीय घाटे पर सिर्फ एसएंडपी ही नहीं, बल्कि रिजर्व बैंक भी चिंतित दिखता है। पर चुनाव नजदीक हों, तो सरकारी घाटा कम करना मुश्किल होता है। इसलिए इस मोर्चे पर सरकार से कुछ ठोस उपाय की उम्मीद करना बेकार है।

कारक नंबर पांच है मौद्रिक नीति की स्थिति। रिजर्व बैंक लगातार चिंता व्यक्त करता रहा है कि महंगाई को कम किये जाने की जरूरत है। महंगाई को कम करने के लिए रिजर्व बैंक के पास अपने औजार हैं पर वे कारगर साबित नहीं हो रहे हैं। कुल मिलाकर स्थिति यही साफ होती है कि रिजर्व बैंक के पास कुछ नया और ठोस कदम नहीं है, जिसके जरिये महंगाई को कम किया जा सके।

रिजर्व बैंक ने हाल में एक रिपोर्ट में चिंता व्यक्त की थी भविष्य में महंगाई का दबाव बढ़ सकता है। यानी तमाम कारक चिंताएं बढ़ाने वाले हैं। पर इसका मतलब यह कतई नहीं है कि भारतीय अर्थव्यवस्था डूबने वाली है। देखा जाए तो हमारी अर्थव्यवस्था ने इससे भी ज्यादा खराब दिन देखे हैं। बहुत से सकारात्मक कारक भी हैं भारतीय अर्थव्यवस्था के पक्ष में। सात प्रतिशत के विकास का आंकड़ा दस प्रतिशत के संभावित विकास के आंकड़े से कम भले हो, पर यह उस स्तर का भी नहीं है कि भारत एकदम से अमेरिका टाइप मंदी में चला जाएगा।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था कोमा जैसी गंभीर हालत में बेशक न हो पर बेहोशी में तो है। कम से कम एसएंडपी की चेतावनी के बाद यह मान लेना चाहिए। अर्थव्यवस्था को मापने वाले तमाम कारक चिंताएं बढ़ाने वाले हैं पर इसका मतलब यह नहीं है कि वह डूबने वाली है। सच पूछें तो हमारी अर्थव्यवस्था ने इससे भी ज्यादा खराब दिन देखे हैं। बहुत से कारक भारतीय अर्थव्यवस्था के पक्ष में भी हैं सात प्रतिशत विकास का आंकड़ा दस प्रतिशत के संभावित आंकड़े से कम बेशक है पर उस स्तर का भी नहीं है कि देश अमेरिका टाइप मंदी में चला जाएगा। हां, भारतीय अर्थव्यवस्था कोमा जैसी गंभीर हालत में बेशक न हो पर बेहोशी में तो है। एसएंडपी की चेतावनी के बाद यह मान लिया जाना चाहिए। ❑

निर्यात बढ़ाने के लिए कैसी हो नीति

भारतीय निर्यात को वैश्विक प्रतिस्पर्धा में बनाए रखने के लिए निर्यातकों को कम ब्याज दर पर धन उपलब्ध कराया जाना चाहिए। वस्तुतः यह दर चीन सहित दुनिया के अन्य देशों की तुलना में बहुत अधिक है। इसके साथ ही सरकार के द्वारा निर्यातक इकाइयों को सस्ती और सुगम बिजली उपलब्ध करानी होगी। देश की निर्यातक इकाइयों में बुनियादी ढांचे की कमी हमेशा कष्ट देती है. . .

■ **जयंतीलाल भंडारी**

इन दिनों देश की नई विदेश व्यापार नीति को अंतिम रूप दिया जा रहा है। नए परिदृश्य में निर्यातकों द्वारा नई विदेश व्यापार नीति में निर्यात बढ़ाने के लिए नए प्रोत्साहन, सुविधा, सहूलियतें और सरलता की अपेक्षाएं की जा रही हैं। पिछले वित्त वर्ष में निर्यात के लिए तय 300 अरब डॉलर के लक्ष्य के नतीजे अपेक्षा के अनुकूल नहीं हैं।

आगामी वित्त वर्ष भारतीय निर्यातकों के लिए अपेक्षाकृत अधिक चुनौती भरा होगा। इसलिए वर्ष 2013–14 तक निर्यात को 500 अरब डॉलर के निर्धारित लक्ष्य तक ले जाने में भी भारी कठिनाइयां होंगी। निर्यात घटने और आयात बढ़ने के कारण विदेश व्यापार घाटा लगातार बढ़ रहा है।

वस्तुतः वर्ष 2010–11 में भारत का विदेश व्यापार घाटा 132 अरब डॉलर के स्तर पर था जिसके वर्ष 2011–12 के दौरान 170 अरब डॉलर तक पहुंचने के संकेत हैं। घाटे के तेजी से बढ़ने का मुख्य कारण बढ़ते हुए आयात और घटते हुए निर्यात हैं। देश की आगे बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था के साथ आयात बढ़ रही है। देश में जिस तेजी से तेल का आयात बढ़ा है उससे तेल का आयात बिल चिंताजनक संकेत दे रहा है। भारत में कुल तेल की खपत का तीन चौथाई हिस्सा आयात होता है। यह लगातार बढ़ता जा रहा है।

भारत का विदेश व्यापार घाटा 132 अरब डॉलर के स्तर पर था जिसके वर्ष 2011–12 के दौरान 170 अरब डॉलर तक पहुंचने के संकेत हैं। घाटे के तेजी से बढ़ने का मुख्य कारण बढ़ते हुए आयात और घटते हुए निर्यात हैं। देश की आगे बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था के साथ आयात बढ़ रही है। देश में जिस तेजी से तेल का आयात बढ़ा है उससे तेल का आयात बिल चिंताजनक संकेत दे रहा है।

तेल के अलावा दूसरी चीजों के आयात में भी तेजी दर्ज की गई है। भारत का निर्यात घटने के पीछे अमेरिका और यूरोपीय देशों की आर्थिक बदहाली सबसे प्रमुख कारण है। यूरो जोन अर्थव्यवस्थाओं में खतरे से भारतीय निर्यात प्रभावित हुआ है। भारत के कुल निर्यात का लगभग 35 प्रतिशत अमेरिका और यूरोप के बाजार में पहुंचता है। इन देशों में भारतीय निर्यात के जो क्षेत्र सबसे ज्यादा प्रभावित हो रहे हैं उनमें जेम्स ऐंड ज्वैलरी, लेदर, टेक्सटाइल, आईटी, फार्मा और कुछ अन्य सेवा क्षेत्र शामिल हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि देश

2012 के अंतिम सप्ताह में नई दिल्ली में आयोजित ब्रिक्स के चौथे शिखर सम्मेलन के दौरान स्थानीय मुद्रा में कारोबार करने के फैसले से काफी मदद मिलेगी। बढ़ती निर्यात चिंताओं के बीच देश के निर्यातकों का मानना है कि नई विदेश व्यापार नीति में उनकी मदद के लिए सरकार द्वारा कुछ जोरदार कदम उठाए जाने चाहिए।

के वाणिज्य मंत्रालय ने कई ऐसे कदम उठाए हैं जिससे निर्यात क्षेत्र में बेहतर प्रदर्शन की उम्मीद बंधी है। देश की ऑटोमोबाइल, फार्मास्यूटिकल्स, इलेक्ट्रॉनिक, केमिकल, इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी, ग्रीन टेक्नोलॉजी, लेदर, टेक्सटाइल और दूसरे अन्य क्षेत्रों के निर्यात को बढ़ाने के लिए नई पहल की गई है। निर्यात बढ़ाने के लिए ढुलाई लागत कम करने पर भी ध्यान दिया गया है। कई देशों में नया निर्यात बाजार खोजने की कवायद है। इन सबके बावजूद निर्यात की राह में कई मुश्किलें हैं।

महंगे ब्याज, मांग में कमी, उत्पादन लागत और मजदूरी में बढ़ोतरी की वजह से भारतीय निर्यात क्षेत्र को वैश्विक बाजार में कड़े मुकाबले का सामना करना पड़ रहा है। देश के निर्यातक अपेक्षा कर रहे हैं कि नई विदेश व्यापार नीति में भारतीय निर्यात को वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धी बनाने की रणनीति पर विचार हो। सरकार द्वारा परंपरागत पश्चिमी बाजारों की कमजोरी को देखते हुए निर्यात के नए और वैकल्पिक बाजार खोजने की तलाश में आगे बढ़ना होगा। आसियान देशों में निर्यात बढ़ाने के नए प्रयास करने होंगे। चीन में भी भारतीय निर्यात की नई संभावनाएं तलाशनी होंगी।

माना जा रहा है कि भारत–आसियान मुक्त व्यापार समझौता यानी एफटीए के लागू होने के बाद भारतीय उद्योगों के लिए असीम अवसर पैदा हुए हैं। भारत आसियान देशों में निर्यात बढ़ा सकता है। इसी तरह खाड़ी देशों में भारत की निर्यात संभावनाएं उभरकर सामने आ रही हैं

लैटिन अमेरिकी देशों के साथ व्यापारिक संभावनाओं को खंगालने की नई पहल तेजी से आगे बढ़ाई जानी चाहिए। लैटिन अमेरिका के चिली, कोलंबिया, कोस्टारिका, डोमिनिकन रिपब्लिक, पनामा, पेरू और त्रिनिदाद व टोबैगो के साथ भारत का कारोबार तेजी से बढ़ सकता है।

लैटिन अमेरिकी देशों में भारतीय निर्यातकों के लिए फार्मा, आर्गेनिक केमिकल, ऑटो पार्ट्स, पेट्रोलियम उत्पाद व टेक्सटाइल क्षेत्र में काफी संभावनाएं हैं। अफ्रीकी देशों में भारत के निर्यात को बढ़ावा देने के प्रयास बढ़ाने होंगे।

पड़ोसी देशों पाकिस्तान, बांग्लादेश, म्यांमार, श्रीलंका, भूटान, थाईलैंड और नेपाल के साथ निर्यात बढ़ाने की नई कोशिशें जरूरी होंगी। भारतीय निर्यातक ब्रिक्स देशों के साथ कारोबार करने की ओर कदम बढ़ा रहे हैं।

ऐसे में मार्च 2012 के अंतिम सप्ताह में नई दिल्ली में आयोजित ब्रिक्स के चौथे शिखर सम्मेलन के दौरान स्थानीय मुद्रा में कारोबार करने के फैसले से काफी मदद मिलेगी। बढ़ती निर्यात चिंताओं के बीच देश के निर्यातकों का मानना है कि नई विदेश व्यापार नीति में उनकी मदद के लिए सरकार द्वारा कुछ जोरदार कदम उठाए जाने चाहिए।

भारतीय निर्यात को वैश्विक प्रतिस्पर्धा में बनाए रखने के लिए निर्यातकों को कम ब्याज दर पर धन उपलब्ध कराया जाना चाहिए। वस्तुतः यह दर चीन सहित दुनिया के अन्य देशों की तुलना में बहुत अधिक है। इसके साथ ही सरकार के द्वारा निर्यातक इकाइयों को सस्ती और सुगम बिजली उपलब्ध करानी होगी। देश की निर्यातक इकाइयों में बुनियादी ढांचे की कमी हमेशा कष्ट देती है। भारत के

इंफ्रास्ट्रक्चर क्षेत्र में निवेश की कमी रही है, लेकिन एक–दो साल से नीतिगत मोर्चे पर फैसले न ले पाने की दिक्कतों से भी निवेश में कमी आई हैं।

बिजली, परिवहन और ब्रॉडबैंड सहित हमारे बुनियादी विकास में जो बाधाएं सामने आ रही है उनसे निपटने के लिए हमें चीन की निर्यात नीति पर ध्यान देना चाहिए। चीन ने 1990 के दशक में ही इंफ्रास्ट्रक्चर सेक्टर में एक लाख बीस हजार करोड़ डॉलर के निवेश का लक्ष्य निर्धारित कर दिया था, जबकि भारत अब जाकर एक लाख करोड़ डॉलर खर्च करने की योजना बना रहा है। चीन में हर साल इन्फ्रास्ट्रक्चर पर 25 फीसदी खर्च बढ़ाया जाता रहा है, लेकिन भारत में इन्फ्रास्ट्रक्चर फाइनेंसिंग क्षेत्र में भारी दिक्कतें हैं।

नई विदेश व्यापार नीति को अंतिम रूप देते समय इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि वर्ष 2008 की मंदी से भी अधिक चिंताजनक 2012 की वैश्विक मंदी हो सकती है। इसके दुष्परिणामों से निर्यात तथा उद्योग–कारोबार को बचाने के लिए जिस तरह अमेरिकी और यूरोपीय बैंक सस्ती ब्याज दरों की बौछारें कर रहे हैं वैसी अपेक्षाएं भारतीय उद्योग जगत को भी है।

भारत में भी निर्यात ब्याज दर घटाना होगा और निर्यातकों को करों में रियायतें देनी होंगी। मुद्रा परिवर्तनीयता पर लगने वाले सेवा कर को समाप्त करने के साथ–साथ विदेशों से मंगाई जाने वाली मशीनरी टैक्स को भी खत्म किया जाना चाहिए। ऐसे भी प्रावधान किए जाने चाहिए जिससे निर्यातकों को कई प्रकार की कठिन प्रक्रिया अपनाने से छूट मिले।

इन सबके साथ–साथ नई विदेश व्यापार नीति में मार्केट स्कीम व प्रोडक्ट स्कीम से निर्यातकों को लाभान्वित करना चाहिए। निर्यात के ऊंचे लक्ष्य को पाने के लिए नई विदेश व्यापार नीति को ऐसे प्रावधानों से सुसज्जित करना होगाा जिससे निर्यात में दुनिया के अन्य देशों से मिल रही कड़ी प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करने के लिए भारतीय निर्यातक खड़े हो सकें और गुणवत्तापूर्ण उत्पादक के रूप में अपनी अलग पहचान बनाते हुए देश के निर्यात लक्ष्यों को हासिल कर सकें। ❑

सदस्यता संबंधी सूचना

मान्यवर,,

स्वदेशी पत्रिका आज देश में चल रहे स्वदेशी आंदोलनों का स्थापित प्रतीक बन चुकी है। पिछले कई वर्षों से स्वदेशी पत्रिका ने असंगत एवं एकतरफा वैश्वीकरण, जनविरोधी आर्थिक उदारीकरण के विरोध एवं वैकल्पिक और रचनात्मक स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में एक सक्रिय प्रहरी के नाते हमेशा आपको जागरूक बनाया है एवं आपसे संवाद स्थापित किया है। विगत कालखंड में इन सभी मुद्दों पर हमें आप जैसे सजग पाठकों का अपेक्षित सहयोग भी मिलता रहा है और भविष्य में भी मिलेगा ऐसा, विश्वास है।

आपसे आग्रह है कि स्वदेशी पत्रिका की आपकी सदस्यता अवधि यदि समाप्त हो गई हो तो कृपया पिछले समय से आगामी वर्ष तक की राशि धनादेश (मनीआर्डर), चेक एवं मांग पत्र (डिमांड ड्राफ्ट) के माध्यम से शीघ्र भेजने की कृपा करें। पत्रिका के लिफाफे के उपर चिपकाए गए पते की प्रथम पंक्ति में सदस्यता अवधि अंकित है। आप अपनी सदस्यता राशि ''स्वदेशी पत्रिका'' के नाम पत्रिका के कार्यालय के पते पर भेज सकते हैं। सदस्यता अद्यतन न हो पाने की स्थिति में वित्तीय कारणों से पत्रिका आगे जारी रखना कठिन होगा।

सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार है।

स्वदेशी पत्रिका	वार्षिक	आजीवन
हिन्दी	100 / –	1000 / –
अंग्रेजी	100 / –	1000 / –

हमें आपका सहयोग स्वदेशी आंदोलन को राष्ट्रव्यापी एवं जनोन्मुखी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाएगा। कृपया स्वदेशी पत्रिका स्वयं भी पढ़ें एवं अन्य को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। पत्रिका के संबंध में अपना निष्पक्ष विचार हमें अवश्य भेजें।

पता : **स्वदेशी पत्रिका कार्यालय, 'धर्मक्षेत्र' शिव शक्ति मंदिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–22**

बुनियादी बदलाव में विफल आंदोलन

अरब देशों में ऐसे अहिंसक व व्यापक स्तर के जन आंदोलन व अभियान जरूरी हैं जो निरंतरता से कार्य कर सकें। दूसरी ओर अन्य देशों को अरब जन आंदोलनों से जरूरी सबक सीखने चाहिए ताकि सार्थक उद्देश्यों में भटकाव से बचा जा सके। जन आंदोलनों को बहुत सावधान रहना होगा ताकि उनके वास्तविक एजेंडे को हाईजैक न कर लिया जाए। इसके लिए बुनियादी मुद्दों व उद्देश्यों की सैद्धांतिक समझ बहुत मजबूत होनी चाहिए और यह समझ अधिक लोगों व कार्यकर्ताओं तक पहुंचनी चाहिए।

■ भारत डोगरा

अरब देशों के जन आंदोलनों के दौर में पश्चिमी देश अपने हितों को बचाने में सफल रहे हैं। स्पष्ट है अरब देशों के जन आक्रोश की अभिव्यक्ति को इस तरह मोड़ दिया गया ताकि वे पश्चिमी हितों को बड़ी चुनौती न दे सकें अन्य देशों को अरब जन आंदोलनों से जरूरी सबक सीखने चाहिए ताकि सार्थक उद्देश्यों में भटकाव से बचा जा सके। जन आंदोलनों को बहुत सावधान रहना होगा ताकि उनके वास्तविक एजेंडे को हाईजैक न कर लिया जाए।

हाल के समय में विश्व में जन आंदोलनों के स्तर पर सबसे अधिक ध्यान अरब देशों के आंदोलनों ने आकर्षित किया। यहां आंदोलनों से शुरू हुई प्रक्रिया सत्ता में बदलाव और विशेषकर लंबे समय से चली आ रही तानाशाहियों को हटाने तक पहुंची। इसके बावजूद यह सवाल उठाना जरूरी है कि आखिर यह बदलाव कितने सार्थक माने जा सकते हैं। इसकी वजह यह है कि तानाशाहियों का हटना तो ठीक था पर जो नई सत्ता विभिन्न अरब देशों में आ रही है वह भी कोई उम्मीद जगाने वाली नहीं है।

मिस्र में धार्मिक कट्टरवादी ताकतों को ही नई व्यवस्था में सबसे बड़ी जगह मिली है। ट्यूनीशिया की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर है। हालांकि वहां भी कट्टर ताकतें मजबूत स्थिति में हैं, पर वहां विभिन्न विचारों के पनपने की अभी भी संभावना है। लीबिया में तो गद्दाफी की जगह जिस नई सत्ता के समीकरण नजर आ रहे हैं, वह साम्राज्यवादी हितों का अधिक पोषण करने वाली होगी, इसकी पूरी संभावना है। यहां के आंदोलन के उभार का साम्राज्यवादी ताकतों ने भरपूर दोहन किया।

आगे यही स्थिति सीरिया में उत्पन्न हो रही है। सीरिया के कुछ क्षेत्रों के लोगों की समस्याएं वास्तविक हो सकती हैं, इनके साथ सहानुभूति भी हो सकती है, पर पश्चिमी देशों विशेषकर अमेरिका का मुख्य उद्देश्य तो सीरिया की वर्तमान सत्ता को अस्थिर कर ईरान को कमजोर करता है। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि अरब देशों में जो मेहनतकश लोग, विद्यार्थी, युवा व अन्य नागरिक आदर्श को लेकर गरीबी व विषमता के विरुद्ध लड़ने आए थे या एक नई उम्मीद वाली व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे, उन्हें निराशा हुई है। उन्होंने हिम्मत दिखाई व त्याग किया पर आंदोलनों का वास्तविक लाभ अन्य ताकतों ने उठाया।

इस प्रक्रिया को समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि साम्राज्यवादी ताकतें अनेक कट्टरवादी तत्वों से भी नजदीकी संबंध बनाए रखती हैं। एक मिथक यह है कि जब से अमेरिका व अन्य विकसित देशों ने आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध को अपनी प्राथमिकता बनाया है तबसे वे सभी तरह के धार्मिक कट्टरवाद के खिलाफ हो गए हैं। ऐसा बिल्कुल नहीं है। आरंभ से ही साम्राज्यवाद के निशाने पर वामपंथी व धर्मनिरपेक्ष ताकतें ज्यादा रहीं हैं। इन्हें दबाने के लिए साम्राज्यवादी ताकतों ने लगातार धार्मिक कट्टरता की ताकतों से संबंध बनाए हैं। अफगानिस्तान में सोवियत संघ के अनुचित हस्तक्षेप के बाद वहां सोवियत सेना से लड़ने के लिए अमेरिका व सीआईए ने मुख्य रूप से कट्टरवादी ताकतों का सहारा लिया।

9/11 की बेहद दर्दनाक घटना के बाद अलकायदा जैसे संगठनों के विरुद्ध तो अमेरिका ने कड़ी कार्रवाई की, पर अनेक अन्य कट्टरवादी तत्वों से अपने नजदीकी संबंध बनाए रखे। जब अरब देशों की तानाशाहियों के विरुद्ध जन आंदोलन बहुत बढ़ने लगा तो साम्राज्यवादी देशों का यह प्रयास रहा कि तानाशाहों के स्थान पर यदि उनके मित्र कट्टर तत्व सत्ता में आ जाएं तो स्थिति उनके अनुकूल बनी रह सकती है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि कट्टरवादी सोच से जुड़ी हुई सऊदी अरब सरकार ने अपने देश व पड़ोसी देशों के कुछ आंदोलनों को कुचलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह काफी हद तक पश्चिमी देशों द्वारा दिए गए अति आधुनिक हथियारों व सैन्य सहायता के बल पर ही संभव हुआ है।

लीबिया में तो यह बहुत खुलेआम देखा गया कि जन आक्रोश को अपने हितों में उपयोग करने की पश्चिमी देशों की जल्दबाजी के कारण बहुत–सी अनावश्यक हिंसा व क्रूरता हुई। इस कारण वहां बहुत से लोग मारे गए जबकि इससे कहीं अधिक

शांतिपूर्ण तरीके से वहां राजनीतिक बदलाव आ सकता था।

पश्चिमी देशों के संबंध केवल कट्टरवादी ताकतों से नहीं हैं, अपितु आधुनिक सोच व तकनीकों से लैस अनेक सामाजिक कार्यकर्ताओं को भी उन्होंने अपनी सहायता प्राप्त संस्थानों की छत्रछाया में तैयार किया है। सूचना क्रांति की नई तकनीकों से लैस ऐसे ही कुछ अरब भी आंदोलनों की अग्रणी पंक्ति में रहे व उन्होंने आंदोलनों को एक विशेष दिशा में मोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मूलतः इनकी सोच यह रही कि बुनियादी आर्थिक व राजनीतिक बदलाव न आए व सत्ता बदलने के बाद या तानाशाही हटने के बाद भी यथास्थिति कुछ महत्वपूर्ण संदर्भ में बनी रहे। मुख्य रूप से पश्चिमी देशों का प्रयास था कि नई सत्ताएं इजराइल का बहुत विरोध न करें, ईरान का बहुत समर्थन न करें व पश्चिमी देशों ने विभिन्न महत्वपूर्ण देशों की सेनाओं को अरबों रुपयों की सैन्य सहायता देकर उनमें जो घुसपैठ की है उसमें दखलंदाजी न करें। इसके साथ पश्चिमी देश यह चाहते हैं कि तेल व गैस संसाधनों पर उनकी पकड़ मजबूत बनी रहे। ईराक में उन्होंने बहुत हिंसा कर यह पकड़ नए सिरे से मजबूत की व लीबिया में भी ऐसा ही किया है।

सबसे बड़े तेल उत्पादक सऊदी अरब की राजशाही के अमेरिका से प्रगाढ़ संबंध बहुत लंबे समय से रहे हैं। कुल मिलाकर हाल के अरब देशों के जन आंदोलनों के दौर में पश्चिमी देश न केवल अपने हितों को बचाने में सफल रहे हैं अपितु लीबिया जैसे कुछ देशों में उन्होंने अपनी स्थिति पहले से कहीं अधिक मजबूत कर ली है।

स्पष्ट है अरब देशों के जन आक्रोश की अभिव्यक्ति को इस तरह मोड़ दिया गया कि वे पश्चिमी हितों को बड़ी चुनौती न दे सकें। यदि पश्चिमी देशों विशेषकर अमेरिका का वास्तविक उद्देश्य लोकतंत्र को आगे बढ़ाना, मानवाधिकारों की रक्षा करना, महिलाओं की समानता को बुलंद करना व मजहबी कट्टरता को रोकना होता तो वे सऊदी अरब के मौजूदा सत्ताधारियों का विरोध अवश्य करते, पर हकीकत यह है कि सऊदी अरब की सत्ता से संयुक्त राज्य अमेरिका के वर्षो से प्रगाढ़ संबंध रहे हैं। इससे जहां सऊदी अरब को अमेरिका का सैन्य समर्थन मिलता है, वहीं अमेरिका को तेल व गैस संबंधी अपने हित सुरक्षित रखने के साथ करोड़ों डालर के सैन्य सामग्री के आर्डर भी मिलते हैं। अरब देशों में पश्चिमी देशों की स्वार्थी नीतियों ने तो कुछ देशों के अस्तित्व व एकता को ही खतरे में डाल दिया है।

यदि पश्चिमी देशों विशेषकर अमेरिका का वास्तविक उद्देश्य लोकतंत्र को आगे बढ़ाना, मानवाधिकारों की रक्षा करना, महिलाओं की समानता को बुलंद करना व मजहबी कट्टरता को रोकना होता तो वे सऊदी अरब के मौजूदा सत्ताधारियों का विरोध अवश्य करते, पर हकीकत यह है कि सऊदी अरब की सत्ता से संयुक्त राज्य अमेरिका के वर्षों से प्रगाढ़ संबंध रहे हैं।

पश्चिमी, विशेषकर अमेरिकी हस्तक्षेप के बाद इराक के कुर्द क्षेत्र में अलगाववाद बहुत बढ़ गया है। इस क्षेत्र में तेल के बड़े भंडार हैं। लीबिया में तेल के बड़े भंडारों वाले क्षेत्र में भी हाल की हिंसक घटनाओं के बाद अलगाववाद की प्रवृत्ति बढ़ी है। इस तरह के अनुभवों को देखते हुए यह सवाल उठाना जरूरी है कि लोकतंत्र व मानवाधिकारों की रक्षा के नाम पर जो दखलंदाजी अरब देशों में पश्चिमी देश करते रहे हैं, उसका उद्देश्य कुछ अन्य तरह की तोड़–मरोड़ तो नहीं है? इस तोड़–मरोड़ का सबसे प्रतिकूल असर यह हुआ कि अरब देशों को जिस बुनियादी बदलाव का बहुत समय से इंतजार था वह प्राप्त नहीं हो सका। इस बदलाव की दिशा समता, न्याय व धर्मनिरपेक्षता होनी चाहिए। बाहरी दखलंदाजी व लूट पर रोक लगनी चाहिए। अरब देशों के संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग यहां के आम लोगों व पर्यावरण की रक्षा के लिए होना चाहिए। तेल व गैस की उपलब्धता सदा नहीं रहेगी। वैसे भी जलवायु बदलाव के दौर में दुनिया तेजी से जीवाश्म ईंधन के विकल्प खोजेगी। इसलिए अरब क्षेत्र के परिवेश के अनुकूल कृषि विकास, खाद्य उत्पादन, जल संरक्षण जैसी जरूरी प्राथमिकताओं पर समुचित ध्यान देना चाहिए। बुनियादी जरूरतों विशेषकर खाद्य के मामलों में विदेशी निर्भरता कम करनी चाहिए। पड़ोसी देशों से मित्रता व क्षेत्रीय सहयोग बढ़ने चाहिए। हथियारों की होड़ से उलझने से बचना चाहिए।

इस तरह के सार्थक बदलाव की ओर बढ़ने के लिए अरब देशों में ऐसे अहिंसक व व्यापक स्तर के जन आंदोलन व अभियान जरूरी हैं जो निरंतरता से कार्य कर सकें। दूसरी ओर अन्य देशों को अरब जन आंदोलनों से जरूरी सबक सीखने चाहिए ताकि सार्थक उद्देश्यों में भटकाव से बचा जा सके। जन आंदोलनों को बहुत सावधान रहना होगा ताकि उनके वास्तविक एजेंडे को हाईजैक न कर लिया जाए। इसके लिए बुनियादी मुद्दों व उद्देश्यों की सैद्धांतिक समझ बहुत मजबूत होनी चाहिए और यह समझ अधिक लोगों व कार्यकर्ताओं तक पहुंचनी चाहिए। आंदोलनों का कार्य निरंतरता से चलते रहना चाहिए व उनमें शामिल सभी मुख्य व्यक्तियों के लिए पूर्ण पारदर्शिता बरतनी जरूरी होनी चाहिए।❑

क्या कर लेगा अकेला पार्षद!

महानगर जहां ग्रामीण भारत के उजड़ने का आधार तैयार कर रहे हैं वहीं ये धीरे–धीरे जातीय और भाषाई अलगाव और टकराव का कारण भी बनते जा रहे हैं। सही मायनों में किसी भी नगर का विकास उपलब्ध साधनों और जनसंख्या के बीच सही संतुलन पर आधारित होना चाहिए। लेकिन हमारे महानगरों में न पर्याप्त पानी है, न बसाने के लिए भूमि और न बिजली। यहां तो कचरे के निबटान तक की कोई समुचित व्यवस्था नहीं है। ऐसे हालात में पार्षद या उनकी संस्था केवल यथास्थिति बनाए रखने का ही अश्वासन दे सकती है...

■ **जवाहरलाल कौल**

दिल्ली महानगरपालिका के चुनाव हर पांच साल पर इस उम्मीद में होते हैं कि अगले पांच सालों में बहुत कुछ बदलेगा। बदलता तो है अवश्य लेकिन बेहतरी के लिए नहीं।

हालात और खराब हो जाते हैं और नागरिकों का जीना अधिक कठिन बन जाता है। चुनाव इसलिए होते हैं कि जो पार्षद अपने वायदों पर खरे नहीं उतरे हों, उनको बदल कर नए उम्मीदवारों को चुना जाए। इसीलिए हर बार चुनाव में ज्यादातर नए उम्मीदवार खड़े होते हैं और बहुत से जीत भी जाते हैं।

लोग अपने प्रतिनिधियों को अधिक उत्तरदायी बनाने के लिए काफी हद तक अपना कर्त्तव्य निभाते ही हैं, फिर क्यों हमारे पार्षद कुछ नहीं कर पाते हैं।

पीने के पानी की समस्या हो या सड़क यातायात की, बिजली की हो या सफाई की, चिकित्सा की हो या गरीबों की शिक्षा की, किसी भी समस्या का नाम लें तो परिणाम निराशाजनक ही होते हैं।

वास्तव में जिसे हम महानगर दिल्ली कहते हैं, उसके दो रूप हैं। एक कागजी और दूसरा वास्तविक। दिल्ली का कागजी रूप वह है, जिसकी सीमाएं बांध दी गई हैं और जो चारों ओर तीन राज्यों से परिसीमित है। यानी हरियाणा, उत्तर प्रदेश और राजस्थान से घिरी दिल्ली।

दूसरा एक और रूप है जिसकी कोई सीमा ही नहीं है। कागजी सीमाओं से प्रतिदिन अंदर आने वाले लाखों लोग जिनमें से कुछ वापस जाते हैं लेकिन कुछ यहीं रह जाते हैं। इस रूप में हर साल लगभग एक बड़ा कस्बा दिल्ली में शामिल हो जाता है। इस लगातार फैलते गुब्बारे के फैलाव की कोई सीमा नहीं है और सीमा बांधने की किसी की हिम्मत भी नहीं है।

यह सिलसिला बरसों से चला आ रहा है और अगर स्थितियां ऐसी ही रहीं तो

कहने को तो हमने दावा किया कि हम समतावादी लोकतांत्रिक व्यवस्था बना रहे हैं, जो साथ ही विकेंद्रित भी हो लेकिन बदले में ऐसी व्यवस्था अपना ली जो अति केंद्रीयकरण पर आधारित है। नगर ही विकास का केंद्र बना, नगर ही सत्ता का केंद्र और नगर ही शिक्षा और ज्ञान का केंद्र भी है। गाँवों के उजड़ने की स्थितियां हमने स्वयं बना दीं तो उजड़ा हुआ ग्रामवासी कहां जाएगा? नगर की ओर ही तो कूच करेगा!

दशकों तक यूं ही चलता रहेगा।

ऐसी स्थिति में एक दिन इस एक महानगर में तीन चार राज्यों की जमीन शामिल करनी पड़ेगी और शायद तीन चार राज्यों का नियंत्रण भी इस पर हो जाएगा।

कभी मुख्यमंत्री इसका रोना रोती सुनाई देती हैं कि बाहर से आने वाले लोगों के कारण विकास शिथिल पड़ता है तो कभी उपराज्यपाल। यह अलग बात है कि अगले ही दिन उन्हें इस पर सफाई देनी पड़ जाती है। यह केवल दिल्ली की दास्तान नहीं है।

महानगर मुम्बई भी इससे भिन्न नहीं है। राज ठाकरे अगर रोज–रोज बिहार के लोगों के खिलाफ कोई न कोई उत्तेजक बयान जारी कर रहे हैं तो इसलिए कि मुम्बई भी अनियंत्रित फैलाव के रोग से ग्रस्त है। वहां यह बड़ा राजनीतिक मुद्दा इसलिए बना है कि उस महानगर में जगह कम है और समुद्र से घिरा होने के कारण उसका फैलाव और भी बेतरतीब होने लगा है। फिर भाषाई तनाव उसे अधिक समस्या प्रदान करता है।

महाराष्ट्रवासियों को यह बताना आसान हो जाता है कि तुम अपने ही नगर में अल्पसंख्यक बनते जा रहे हो। कोलकाता को विशेषज्ञ मरता हुआ नगर घोषित कर चुके थे क्योंकि धीमे विकास, बेरोजगारी और बेतरतीब फैलाव ने वहां प्रशासनिक अराजकता पैदा कर दी थी। पर जिन वामपंथी दलों पर इसका दोष मढ़ा जा रहा था, उन्हें सत्ता से बाहर करने के बाद जिस लोकतांत्रिक सरकार के हाथों में सत्ता आ गई है, वह इस महानगर में बहुत कुछ बदल सकती है, ऐसा कोई संकेत नहीं मिल रहा है।

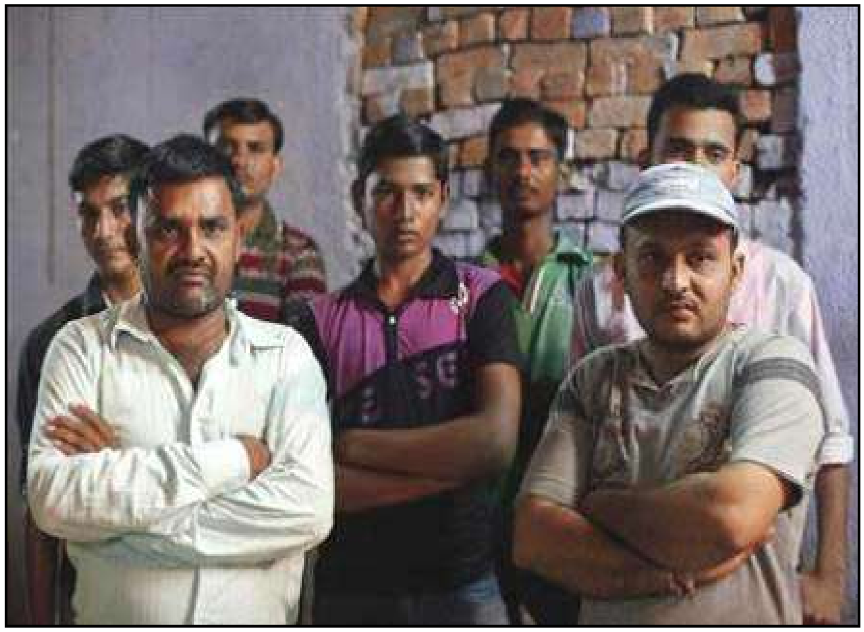

बदलने के लिए उन मौलिक कारणों की तह में जाना होगा जो ऐसी परिस्थितियां बना रहे हैं। दरअसल यह कुछ बड़े नगरों का रोग नहीं है। यह हमारे देश में शहरीकरण की विकृति है।

कहने को तो हमने दावा किया कि हम समतावादी लोकतांत्रिक व्यवस्था बना रहे हैं, जो साथ ही विकेंद्रित भी हो लेकिन बदले में ऐसी व्यवस्था अपना ली जो अति केंद्रीयकरण पर आधारित है। नगर ही विकास का केंद्र बना, नगर ही सत्ता का केंद्र और नगर ही शिक्षा और ज्ञान का केंद्र भी है। गाँवों के उजड़ने की स्थितियां हमने स्वयं बना दीं तो उजड़ा हुआ ग्रामवासी कहां जाएगा? नगर की ओर ही तो कूच करेगा!

महानगर जहां ग्रामीण भारत के उजड़ने का आधार तैयार कर रहे हैं, वहीं जातीय और भाषाई अलगाव और टकराव का कारण भी बनते जा रहे हैं।

आज ग्राम्य परिवेश इस हद तक उजड़ गया है कि गांवों में खेतों में काम करने के लिए मजदूर उपलब्ध नहीं हैं। किसी को गलतफहमी हो सकती है कि गांवों में रोजगार की कोई कमी ही नहीं। दरअसल हर स्वस्थ और नौजवान आज शहर भागने को तैयार रहता है क्योंकि यह

आज ग्राम्य परिवेश इस हद तक उजड़ गया है कि गांवों में खेतों में काम करने के लिए मजदूर उपलब्ध नहीं हैं। किसी को गलतफहमी हो सकती है कि गांवों में रोजगार की कोई कमी ही नहीं। दरअसल हर स्वस्थ और नौजवान आज शहर भागने को तैयार रहता है क्योंकि यह धारणा बलवती होती गयी है कि जो कुछ अच्छा मिलेगा, नगर में ही मिलेगा। हमारे नगर आयोजक शायद इस स्थिति के लिए तैयार ही नहीं थे। अगर रहे भी होंगे तो भी उन की सलाह नेतागण मानने को तैयार नहीं रहे होंगे।

दिल्ली और दूसरे महानगरों की त्रासदी को अपनी राजनीति की समिधा बनाने में हमारे सत्ताधारियों और उनकी देखा देखी विरोधी दलों को देर नहीं लगी। दिल्ली में आबादी की बाढ़ विभाजन के तुरंत बाद तब आई जब पाकिस्तान से लाखों लोग भाग कर भारत आये। इस पर हमारे आयोजकों का वश नहीं था लेकिन जब नगर विकास की योजनाएं बनने भी लग गईं, तब भी इस बात का ध्यान किसी ने नहीं किया कि आबादी की यह बाढ़ एक समय की घटना नहीं। जिस तरह की अर्थव्यस्था हमने अपना ली है, उसका नतीजा गांवों से शहरों की ओर पलायन ही हो सकता है।

धारणा बलवती होती गयी है कि जो कुछ अच्छा मिलेगा, नगर में ही मिलेगा। हमारे नगर आयोजक शायद इस स्थिति के लिए तैयार ही नहीं थे। अगर रहे भी होंगे तो भी उन की सलाह नेतागण मानने को तैयार नहीं रहे होंगे।

दिल्ली और दूसरे महानगरों की त्रासदी को अपनी राजनीति की समिधा बनाने में हमारे सत्ताधारियों और उनकी देखा देखी विरोधी दलों को देर नहीं लगी। दिल्ली में आबादी की बाढ़ विभाजन के तुरंत बाद तब आई जब पाकिस्तान से लाखों लोग भाग कर भारत आये। इस पर हमारे आयोजकों का वश नहीं था लेकिन जब नगर विकास की योजनाएं बनने भी लग गईं, तब भी इस बात का ध्यान किसी ने नहीं किया कि आबादी की यह बाढ़ एक समय की घटना नहीं। जिस तरह की अर्थव्यस्था हमने अपना ली है, उसका नतीजा गांवों से शहरों की ओर पलायन ही हो सकता है।

अर्थव्यवस्था के साथ राजनीति का जो स्वरूप देश में पनपने लगा, उसमें गैर कानूनी बस्तियों में राजनीतिक दलों का निहित स्वार्थ भी पैदा हो गया। दिल्ली के फैलाव को जिन्होंने देखा है, उन्हें अच्छी तरह मालूम है कि यहां हर चुनाव से पहले गैर–कानूनी बस्तियों को स्वीकृति देने की लहर चलती रही है। यानी हर चुनाव आने से पहले दिल्ली के आकर में एक चौथाई आबादी की वृद्धि हो जाती रही है लेकिन यह कथित विकास न तो किसी पूर्व नियोजित कार्यक्रम के तहत होता है और न ही उसके भावी प्रभाव पर ध्यान दिया जाता है।

यह एक ऐसा चक्रव्यूह है जिससे दिल्ली या मुम्बई का निकलना आसान नहीं और विडम्बना यह है कि दिल्ली और मुम्बई के इस मॉडल को देश के सभी नगरों और महानगरों ने अपना लिया है, या यूं कहें कि इस के अतिरिक्त कोई दूसरा मॉडल उपलब्ध भी नहीं था। किसी जमाने में मुम्बई में दक्षिण भारतीय लोगों की संख्या और कारोबार पर उनके असर के खिलाफ महाराष्ट्र के निवासियों की भावनाओं को भड़काकर ही शिवसेना का उदय हुआ था। उस भावना को अब बाल ठाकरे से आगे निकलने की होड़ में राज ठाकरे बिहारवासियों के विरुद्ध इस्तेमाल कर रहे हैं।

ऐसी ही स्थितियां कोलकाता और दूसरे नगरों में भी पैदा हो सकती हैं। महानगर जहां ग्रामीण भारत के उजड़ने का आधार तैयार कर रहे हैं वहीं ये धीरे–धीरे जातीय और भाषाई अलगाव और टकराव का कारण भी बनते जा रहे हैं। सही मायनों में किसी भी नगर का विकास उपलब्ध साधनों और जनसंख्या के बीच सही संतुलन पर आधारित होना चाहिए। लेकिन हमारे महानगरों में न पर्याप्त पानी है, न बसाने के लिए भूमि और न बिजली। यहां तो कचरे के निबटान तक की कोई समुचित व्यवस्था नहीं है। ऐसे हालात में पाषर्द या उनकी संस्था केवल यथास्थिति बनाए रखने का ही अश्वासन दे सकती है।

दरअसल हमारे महानगरों के आईने में ही हमारे देश की शासन और अर्थव्यवस्था की तस्वीर देखी जा सकती है, इसलिए जब चुनाव होते हैं तो उम्मीदवार वायदे चाहे जो भी करते हैं, पर उन्हें पूरा करना उनके वश की बात नहीं रहती। और मतदाता भी एक अच्छे नगर या अनुशासित प्रशासन को नहीं, बल्कि विभिन्न वर्गों के निहित स्वार्थ को पूरा करने के अनुकूल तंत्र को ही चुनना चाहते हैं। महानगरों का प्रशासन इस गतिहीनता और दिशाभ्रम के कारण ही भ्रष्टाचार का केंद्र बन गया है। ❑

दरअसल हमारे महानगरों के आईने में ही हमारे देश की शासन और अर्थव्यवस्था की तस्वीर देखी जा सकती है, इसलिए जब चुनाव होते हैं तो उम्मीदवार वायदे चाहे जो भी करते हैं, पर उन्हें पूरा करना उनके वश की बात नहीं रहती। और मतदाता भी एक अच्छे नगर या अनुशासित प्रशासन को नहीं, बल्कि विभिन्न वर्गों के निहित स्वार्थ को पूरा करने के अनुकूल तंत्र को ही चुनना चाहते हैं।

कब बचाएंगे अपनी जीवनदायी नदियों को..?

खुद प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के ही अनुसार गंगा में प्रतिदिन 29,000 लाख लीटर प्रदूषित जल उड़ेला जा रहा है। इसमें औद्योगिक प्रदूषण का योगदान 20 फीसदी है, लेकिन यह विषाक्त कचरे के रूप में है। राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड इस पर लगाम लगाने में विफल रहे हैं। यह और कुछ नहीं, बल्कि गंगा को नष्ट करने वाला कार्य है। इसके लिए केंद्र और राज्य सरकारें जिम्मेदार हैं।

■ निरंकार सिंह

गंगा और यमुना कोई साधारण नदियां नही हैं। सदियों से ये हिंदुओं की आस्था का केंद्र रही हैं। पर आज इन नदियों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। पिछले 56 वर्षों में गंगा के पानी में बीस फीसदी की कमी आई है। आगामी दशकों में इस कमी के बढ़ने की पूरी आशंका है। यही हाल रहा तो अगले 50 सालों में गंगा नदी सूख जाएगी।

यह निष्कर्ष नदियों के आकार प्रकार पर शोध करने वाले विशेषज्ञों के एक दल ने निकाला है। इस प्रमुख नदी की 27 धाराओं में से अब तक 11 धाराएं विलुप्त हो चुकी हैं और 11 धाराओं में जलस्तर में तेजी से कमी आ रही है। पर्यावरण की दृष्टि से यह स्थिति भयावह है। इसका कारण गंगोत्री ग्लेशियर का तेजी से पिघलना बताया गया है। गंगा के यदि हम धार्मिक महत्व को छोड़ दें तो भी गंगोत्री से लेकर गंगासागर तक इसके किनारे बसी हुई तीस करोड़ से अधिक आबादी और तमाम जीव–जंतुओं, वनस्पतियों के जीवन का मूल आधार गंगा ही है। गंगा के बिना गंगा की घाटी में जीवन संभव नहीं है। इसलिए इसकी रक्षा, इसे निर्मल बनाए रखने की चिंता और प्रयास जो नहीं करता है, वह अपने साथ ही आत्मघात कर रहा है।

गंगोत्री के गोमुख से निकलने के बाद गंगा नदी ने 27 धाराओं (उपनदियों) को जन्म दिया, जो विभिन्न स्थानों पर अलग–अलग नामों से जानी जाती हैं। गंगा की धाराओं में 11 धाराएं – रुद्र गंगा, खांडव गंगा, नवग्राम गंगा, शीर्ष गंगा, कोटगंगा, हेमवंती गंगा, शुद्ध तरंगणी गंगा, धेनु गंगा, सोम गंगा और दुग्ध गंगा विलुप्त हो चुकी हैं। गणेश गंगा, गरूण गंगा और हेम गंगा की धारा सूख गई है।

वेदों से लेकर वेदव्यास तक, वाल्मीकि से लेकर आधुनिक कवियों और साहित्यकारों ने गंगा का गुणगान किया है। इसका भौगोलिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और अध्यात्मिक महत्व है। गंगा को शास्त्रों ने एक सुगम और नित्य तीर्थ कहा है। वेदों और पुराणों में गंगा को बारंबार तीर्थमयी कहा गया है। पर अफसोस कि भगीरथ की जिस गंगा में कभी निर्मल जल की धारा बहती थी, आज वहां सड़ांध और दुर्गध के भभके उठते रहते हैं।

खुद प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के ही अनुसार गंगा में प्रतिदिन 29,000 लाख लीटर प्रदूषित जल उड़ेला जा रहा है। इसमें औद्योगिक प्रदूषण का योगदान 20 फीसदी है, लेकिन यह विषाक्त कचरे के रूप में है। राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड इस पर लगाम लगाने में विफल रहे हैं। यह

वेदों से लेकर वेदव्यास तक, वाल्मीकि से लेकर आधुनिक कवियों और साहित्यकारों ने गंगा का गुणगान किया है। इसका भौगोलिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और अध्यात्मिक महत्व है। गंगा को शास्त्रों ने एक सुगम और नित्य तीर्थ कहा है। वेदों और पुराणों में गंगा को बारंबार तीर्थमयी कहा गया है। पर अफसोस कि भगीरथ की जिस गंगा में कभी निर्मल जल की धारा बहती थी, आज वहां सड़ांध और दुर्गध के भभके उठते रहते हैं।

और कुछ नहीं, बल्कि गंगा को नष्ट करने वाला कार्य है। इसके लिए केंद्र और राज्य सरकारें जिम्मेदार हैं।

सरकार जनता की इस उदासीनता से गंगा की घाटी का जीवन खतरे में पड़ सकता है। कानपुर में तो इस नदी ने एक तरह से नाले का रूप ले लिया है और वह अपने स्थान से भी खिसक रही है। अपनी नदियों को प्रदूषण से बचाना हमारा कर्तव्य है, पर गंगा और यमुना जैसी पावन नदियों को भी प्रदूषण से मुक्त कराने की चिंता अब शायद सरकार को नहीं है। इसीलिए इसके लिए अदालतों को बार–बार पहल करनी पड़ती है। सरकार यदि इन पावन नदियों की साफ–सफाई भी नहीं कर सकती है तो फिर उसके होने न होने से क्या फर्क पड़ता है। जब तक योजनाओं और घोषणाओं को पूरी इच्छा शक्ति से लागू नहीं किया जाएगा और लोगों को जागरूक नहीं किया जाएगा, तब तक हम गंगा–यमुना जैसी अपनी जीवनदायी नदियों को नहीं बचा सकते हैं।

दुनिया की किसी नदी ने गंगा की भांति न तो मानवता को प्रभावित किया है और न ही भौतिक सभ्यता तथा सामाजिक नैतिकता पर इतना प्रभाव डाला है। जितने व्यक्तियों और जितने क्षेत्रों को गंगा के जल से लाभ मिलता है, उतना संसार की किसी और नदी से नहीं पहुंचता है।

यह वस्तुतः भारतीय संस्कृति का मेरूदंड बन गई है। गंगा के प्रवाह के चढ़ाव–उतार ने अनेक साम्राज्यों के चढ़ाव–उतार को देखा है। हस्तिनापुर, कान्यकुब्ज, प्रतिष्ठान, पाटलिपुत्र, काशी, चंपा आदि इस तट पर बसे थे। भारत के जल व्यापार और नौ–शक्ति का प्रारंभ इसी की धाराओं से हुआ था। लगभग चार लाख वर्गमील की भूमि इसके पानी से सींची और उर्वर बनाई जाती है। भारत की एक तिहाई आबादी इसी के तट पर बसती है। इसकी महिमा फाह्यान, ह्वेनसांग, इत्सिंग आदि विदेशी दार्शनिकों और रसखान, रहीम, ताज, मीर जैसे मुस्लिम संतों ने भी गाई है। इन सारी बातों को छोड़ दें तो भी इसके अमृत के समान जल के कारण यह नदी भारत की जीवनदात्री है। वैज्ञानिक अनुसंधानों से भी यह सिद्ध हो गया है कि दुनिया की नदियों में गंगा ही सबसे पवित्रतम नदी है। इसके जल में कीटाणुओं के उन्मूलन की क्षमता सबसे अधिक है। शरीर के विभिन्न अंगों के रोग इसके पवित्र जल से दूर हो जाते हैं।

दुनिया की किसी नदी ने गंगा की भांति न तो मानवता को प्रभावित किया है और न ही भौतिक सभ्यता तथा सामाजिक नैतिकता पर इतना प्रभाव डाला है। जितने व्यक्तियों और जितने क्षेत्रों को गंगा के जल से लाभ मिलता है, उतना संसार की किसी और नदी से नहीं पहुंचता है।

शुद्ध गंगाजल इस धरती पर एक दुर्लभ द्रव्य है। कुछ साल पहले यूनेस्को के एक वैज्ञानिक दल ने हरिद्वार के निकट गंगा के पानी के अध्ययन के बाद कहा था कि जिस स्थान में पानी की धारा में मुर्दे, हड्डियां आदि दूषित वस्तुएं बह रही थीं, वहीं कुछ फुट नीचे का जल पूर्ण शुद्ध था। अनुसंधानों से यह भी पता चला है कि गंगा के जल में हैजे के कीटाणु तीन चार घंटे में स्वतः मर जाते हैं। इसके जल की पवित्रता अक्षुण्ण बनी रहे, इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है कि इसके तट पर मानव–वास नहीं होना चाहिए।

गंगा के तट से सात किलोमीटर की जमीन को क्षेत्र कहते हैं। इस सीमा के भीतर रहने वाले को गंगा के जल और वायु से विशेष लाभ पहुंचता है। पद्म पुराण के अनुसार गंगा तट को मल–मूत्र, थूक आदि से दूषित करने वाला व्यक्ति पातकी होता है। अपनी नदियों और जल–स्रोतों को साफ–सुथरा रखने का कर्तव्य हर व्यक्ति का होना ही चाहिए, क्योंकि हवा के बाद पानी ही हमारे जीवन के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है। वैश्वीकरण की नीतियों को लागू किए जाने के बाद से भारत दुनिया के विकसित देशों का कूड़ाघर बनता जा रहा है।

एक तरफ बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपना कचरा यहां की नदियों में बहा रही हैं तो दूसरी तरफ भारत में विकसित देशों ने अपने औद्योगिक अपशिष्ट को बेचने की जो प्रक्रिया पिछले कई वर्षों से अपना रखी थी, उस पर भारत के उच्चतम न्यायालय ने जनहित में फैसला देते हुए 1997 में पूरी तरह रोक लगा दी थी, लेकिन इसके बावजूद पता नहीं किन अज्ञात संधियों और कूटनयिक समझौतों के अंतर्गत यह अत्यंत विषैला कचरा लगातार अलग–अलग माध्मयों से भारत में निरंतर आता रहा है।

उच्चतम न्यायालय की रोक के बावजूद यह सिलसिला जारी है। भारी मात्रा में शीशे के अलावा परमाणु रियेक्टरों तथा परमाणु बमों में नियंत्रक तत्व के रूप में प्रयोग की जाने वाली कैडमियम धातु भी गंगाजल में बड़ी मात्रा में पाई जा रही है, लेकिन इसकी सफाई के लिए चलाई जा रही योजनाओं का अभी तक कोई नतीजा सामने नहीं आया है। इस चुनौती का मुकाबला किए बिना हमारा उद्धार गंगा नहीं कर सकती है। ❑

आधुनिकता का कचरा

चिंता कि बात तो ये है कि इलैक्ट्रोनिक कचरे ने लोगों के स्वास्थ्य के लिए भी बड़ा खतरा पैदा कर दिया है। इलैक्ट्रोनिक कचरा कई तरह की बीमारियों को पैदा करता है, जिनमें सांस से संबंधित बीमारियों के अलावा, स्किन से संबंधित बीमारियाँ, हैपेटाइटिस–बी शामिल है। आपको जानकर हैरानी होगी कि ई–वेस्ट कैंसर तक का खतरा पैदा करने का माद्दा रखता है। इसके अलावा कई तरह की संक्रमित बीमारियों को जन्म देता है ई–वेस्ट।

■ अमित कुमार

सोफे पर बैठे–बैठे हम खबरों की दुनिया से निकलकर फिल्मी दुनिया में घूमने लगते हैं। रिमोट के बटन के आसरे चैनल बदलने का सिलसिला शुरू हो जाता है। कंप्यूटर पर उंगलियों के सहारे हम दुनियाभर में होने वाली गतिविधियों को महसूस कर सकते हैं।

दो दशक पहले तक जिंदगी इतनी आसान नहीं थी। लेकिन अब वक्त बदल गया है क्योंकि अब हमारे पास इलैक्ट्रोनिक साधनों की भरमार है। जहाँ इन इलैक्ट्रोनिक साधनों के सहारे लोगों की जिंदगी कठिनाईयों और लेटलतीफी से बाहर निकली, वहीं इनके बढ़ते इस्तेमाल ने लोगों के लिए एक बहुत बड़ा खतरा भी पैदा कर दिया। और ये खतरा है ई–वेस्ट।

आखिर क्या है ये ई–वेस्ट, क्यों आज इस विषय पर चर्चा हो रही है और क्या जरूरत पड़ी सरकार को ई–कचरा (प्रबंधन एवं संचालन) अधिनियम 2011 को लागू करने की।

इलैक्ट्रोनिक साधनों के बिना जिंदगी गुजारना किसी भयावह सपने से कम नही है। बिना कंप्यूटर के ऑफिसों में काम नामुमकिन होता जा रहा है, घरों में बच्चे विडियोगेम खेलने के लिए कंप्यूटरों का इस्तेमाल करने लगे हैं, स्कूली सिलेबसों में कंप्यूटर जरूरी हो गया है। तेजी से बढ़ते कंप्यूटरमेनिया से ई–वेस्ट में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। जहाँ पहले एक कंप्यूटर की उम्र 7 से 8 साल हुआ करती थी वहीं वो घटकर 3 से 4 साल हो गई है। देश में अभी करीब 8 करोड़ कंप्यूटर हैं और आप जानकर चौंक जाएंगे कि अगले पाँच साल में इसकी संख्या बढ़कर दोगुनी से भी ज्यादा हो जाएगी। लोगों के घरों में मनोरंजन के साधन टेलीविजन की आबादी भी 2015 तक बढ़कर 24 करोड़ के आसपास पहुँच जाएगी।

वहीं बात की जाए मोबाइल्स की तो भारत में इसके यूजर भी लगातार बढ़ते जा रहे हैं। एक अनुमान के मुताबिक भारत में लगभग 70 करोड़ मोबाइल इस्तेमाल किए जा रहे हैं। ई–वेस्ट का प्रबंधन करने वाली कंपनियों का मानना है कि किसी मोबाइल फोन को 98 फीसदी तक रिसाइकिल किया जा सकता है, उसी तरह कंप्यूटर की रिसाइकिलिंग भी कई तरह के नए उत्पादों को जन्म दे सकती है। मेमोरी डिवाइस, एमपी–3 प्लेयर और आईपॉड, ई–वेस्ट में निश्चित तौर पर इजाफा करते हैं।

ई–वेस्ट के बढ़ते इस्तेमाल ने बाजार को एक नया कारोबार खोलने के लिए भी प्रेरित किया है। इलैक्ट्रोनिक साधनों के बढ़ते इस्तेमाल और उसके बाद उससे होने वाले खतरों को देखते हुए विशेषज्ञों ने वेस्ट मैनेजमेंट का रास्ता सबके सामने रखा। इलैक्ट्रोनिक कचरे को फिर से इस्तेमाल करने का तरीका है वेस्ट मैनेजमेंट। इसमें कचरे को नष्ट करने की बजाए उसे रिसाइकिल किया जाता है।

इलैक्ट्रोनिक कचरा पैदा करने के मामले में अव्वल देश होने के नाते ये जरूरी होता है कि भारत सरकार इसे लेकर कुछ प्रयास करे।

इसी कड़ी में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की अधिसूचना प्रभावी हो गई। इस माह से प्रभावी हुए ई–कचरा (प्रबंधन एवं संचालन)अधिनियम 2011 के प्रावधान के मुताबिक जो कंपनियां इलेक्ट्रोनिक उत्पाद बनाती हैं उसे सही ढंग से रिसाइकल करने की जिम्मेदारी उन्हीं की होगी। इसके लिए कंपनियों को जगह–जगह कुछ ऐसे सेंटर खोलने होंगे जहाँ इन उत्पादों की कलेक्शन हो सके। इतना ही नही इन रिसाइकल केंद्रों के प्रति लोगो को जागरूक करने का काम भी निर्माता कंपनियों को ही करना होगा।

अहम बात ये है कि यह कानून एक साल पहले ही बन गया था लेकिन कंपनियों ने अब तक रिसाइकिलिंग सेंटर्स के बारे में जागरूकता संबंधी कार्यक्रम चलाए हों ऐसा प्रतीत नहीं होता।

दिलचस्प बात तो ये है कि कंपनियाँ अभी तक ये भी सुनिश्चित नहीं कर पाई है कि जो लोग ई–कचरा कंपनियों को लौटाएंगे उसके एवज उन्हें कितनी कीमत दी जाएगी। कंपनियाँ इस सामान को मुफ्त में लेना चाहती हैं लेकिन गौरतलब है कि जब कबाड़ी भी हमसे ई–कचरा ले जाता है तो वो भी उसकी कुछ कीमत अदा करता है तो बड़ा सवाल ये है कि कंपनियाँ इससे क्यों इंकार कर रही हैं?

हालांकि इस मामले में कंपनियां कहती हैं कि उन्हें ई–वेस्ट को रिसाइकिल करने में खर्चा करना पड़ेगा। अगर सरकारी पक्ष पर ध्यान दें तो पाएंगे कि सरकार भी इस मामले में लोगों को जागरूक करने में विफल ही रही है। लोग अभी भी ई–कचरे के निपटान को लेकर जागरूक नहीं है।

एक अनुमान के मुताबिक करीब 3.5 लाख टन ई–कचरा सालाना दिल्ली में इकट्ठा होता है और उस कचरे का अवैज्ञानिक ढंग से निपटारा किया जा रहा है। दरअसल कचरे के अवैज्ञानिक ढंग से निपटान करने की वजह से पर्यावरण और लोगों को काफी नुकसान हो रहा है। गौर करने की बात ये है ई–कचरे के अवैज्ञानिक तरीके से निपटारा होने के एवज में पर्यावरण एवं संरक्षण अधिनियम के तहत कार्रवाई तक का प्रावधान है। दोषी पाए जाने पर 5 साल तक की सजा और 1 लाख रूपये के जुर्माने तक का प्रावधान है।

लेकिन दुर्भाग्य है कि ई–कचरे के निपटारा एक गोरखधंधा बन गया है और कई जिंदगियों को नाश करने पर तुला हुआ है।

जनसंख्या का लगातार बढ़ना और आर्थिक विकास की राह पर दौड़ते भारत के सामने इस कचरे का अंबार लगातार बढ़ता जा रहा है। कार्बनिक उत्पाद, गंदगी और धूल लगभग 80 फीसदी कचरे को पैदा करते है। बढ़ती जनसंख्या की वजह से इस कचरे को पैदा होने से रोका तो नहीं जा सकता लेकिन इसका मैनेजमेंट करके इसका सही इस्तेमाल जरूर किया जा सकता है।

विशेषज्ञों के अनुसार तीन तरीकों से इलैक्ट्रोनिक कचरे को मैनेज किया जा सकता है। पहला तरीका है जमीन में गड्ढा खोदकर कचरा गाड़ना, दूसरा है कचरे को इकट्ठा करके उसे जलाना और तीसरा और सबसे कारगर तरीका है कचरे को रिसाइकिल करके फिर से इस्तेमाल करना। विशेषज्ञ इस तरीके को सबसे कारगर समझते हैं।

देश में सन् 2000 से पहले कचरे को रिसाइकिल करने की नीति नहीं थी। लेकिन उसी साल सरकार ने इस पर सोचना शुरू किया।

वेस्ट मैनेजमेंट की नीतियाँ समाज के हर तबके के हिसाब से अलग–अलग बनाई गई। ये नीतियाँ विकसित और विकासशील देशों के लिए अलग है और शहरी और ग्रामीण इलाकों के लिए अलग। औद्योगिक क्षेत्रों के लिए भी अलग से नीतियाँ बनाई गई, इन नीतियों पर कुछ देशों में तो काम हो रहा है लेकिन भारत में इस ओर न के बराबर ध्यान दिया जा रहा है।

ऑस्ट्रेलिया में कचरा इकट्ठा करने के लिए म्युनिसिपैलिटी हर एक मकान मालिक को तीन तरह के डस्टबिन देती है, जिनमें रिसाइकिल होने वाला कचरा, साधारण कचरा और बगीचे का कचरा अलग–अलग डाला जाता है। वहीं कनाडा में सारे शहर का कूड़ा इकट्ठा कर उसे रिसाइकिल किया जाता है।

कनाडा में गाँवों में ट्रांसफर स्टेशन बनाकर कचरा रिसाइकिल केंद्रों को भेजा जाता है। दरअसल भारत में इस तरह के प्रयोगों की तरफ ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता। कुछ एनजीओ भी इस विषय पर काम कर रहे हैं लेकिन भारत में इस प्रयास को जागरूकता के अभाव में वो कामयाबी नहीं मिल पा रही जो विदेशों में मिल रही है।

ई–वेस्ट मैनेजमेंट को कारोबार के तौर पर भी कई कंपनियाँ अपना रही है और देश में जिस तरह से इलैक्ट्रोनिक साधनों का प्रयोग बढ़ रहा है उससे इन कंपनियों के सुनहरे भविष्य को लेकर कोई आशंका नज़र नहीं आती।

चिंता कि बात तो ये है कि इलैक्ट्रोनिक कचरे ने लोगों के स्वास्थ्य

के लिए भी बड़ा खतरा पैदा कर दिया है। इलैक्ट्रोनिक कचरा कई तरह की बीमारियों को पैदा करता है, जिनमें सांस से संबंधित बीमारियों के अलावा, स्किन से संबंधित बीमारियाँ, हैपेटाइटिस–बी शामिल है। आपको जानकर हैरानी होगी कि ई–वेस्ट कैंसर तक का खतरा पैदा करने का माद्दा रखता है। इसके अलावा कई तरह की संक्रमित बीमारियों को जन्म देता है ई–वेस्ट।

ई–वेस्ट के खतरे को रोकने के लिए कई तरह के प्रोग्राम भी चलाए जा रहे हैं जिनमें स्वास्थ्य कर्मियों, कार्यकर्ताओं और गैरसरकारी संगठनों को शिक्षित किया जा रहा है। इस समस्या का सामना करने के लिए इग्नू ने वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाईजेशन के साथ हाथ मिलाकर कई तरह के कार्यक्रमों की शुरूआत भी की है। हालांकि जैसे–जैसे लोगों में जागरूकता आएगी इस ओर सुधार आएगा, लेकिन ये भी सच्चाई है कि जागरूकता का स्तर जिस गति से बढ़ेगा उस गति से इलैक्ट्रोनिक साधनों के प्रयोग में भी इजाफा होगा और ये निश्चित तौर पर गंभीर समस्या को ही जन्म देगा।

ई–वेस्ट के तौर पर ज्यादा चर्चा हमारे देश में नहीं होती बल्कि भारत ई–वेस्ट उत्पादन के मामले में अव्वल देशों में गिना जाता है। दुनियाभर में 80 प्रतिशत ई–वेस्ट चीन,पाकिस्तान और भारत में पैदा होता है और दुर्भाग्य है कि ई–वेस्ट को मैनेज करने के बारे में सबसे कम जागरूकता इन्हीं देशों मे देखने को मिलती है। ई–वेस्ट निश्चित तौर पर कई बीमारियों को तो जन्म देता ही है उसके साथ पर्यावरण के लिए भी भयानक खतरा पैदा करता है और ये खतरा भारतीयों की बढ़ती जनसंख्या के बाद और भी भयानक रूप में सामने आने की कगार पर है। किसी वस्तु को कई बार इस्तेमाल करना भारतीय मानसिकता का पॉजिटिव पहलू है।

दिल्ली का सीलमपुर, मुंडका और नेहरू प्लेस, सैकेंड हैंड इलैक्ट्रोनिक पार्ट्स के एक बहुत बड़े बाजार के रूप में उभर रहे हैं। उसी तरह मुंबई का धारावी इलाका भी गैरसंगठित मजदूरों की फैक्ट्री बन गया है, जहाँ मल्टीनेशनल कंपनियों के सैकड़ों एजेंट अपने ही लोगों के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। कोड़ी के भाव के खराब हो चुके पार्टस रिसाइकिल होने के बाद हजारों की कीमत का भाव रखते हैं। नदियों की अविरल बहती धारा में बड़े पैमाने पर इन पार्ट्स का गंदा पानी जहर के रूप में घोला रहा है। सरकार से सवाल है कि क्या ये जनता के अधिकारों का हनन नही है?

भारतीय घरों में इलैक्ट्रोनिक साधनों की चिपों में से तांबा और मेटल निकालने का काम जोरों पर होता है और यही मेटल और तांबा मल्टीनेशनल कंपनियों में दोबारा इस्तेमाल के लिए पहुँचता है।

दरअसल रिसाइकिलिंग का काम भारत में निचले स्तर पर तो हो रहा है लेकिन इसे ऑर्गेनाइज्ड तौर से करना उतना ही जरूरी है जितना अस्पतालों में दवाइयों का वितरण और बात अस्पताल की आ ही गई है तो हम आपको बता दें कि अस्पतालों से भी बहुत बड़ी मात्रा में ई–कचरा पैदा होता है। मल्टीनेशनल कंपनियाँ अपने फायदे के लिए भारत के गरीब क्षेत्रों में छोटे स्तर पर इलैक्ट्रोनिक पार्टस की रिसाइकिलिंग करवा रही है जिससे लोगों के स्वास्थ्य को भयंकर खतरा है।

दुर्भाग्य है कि इन गैरसंगठित मजदूरों के लिए सरकार के पास किसी भी तरह का कोई ब्लू प्रिंट नही है। दिल्ली का सीलमपुर, मुंडका और नेहरू प्लेस, सैकेंड हैंड इलैक्ट्रोनिक पार्टस के एक बहुत बड़े बाजार के रूप में उभर रहे हैं। उसी तरह मुंबई का धारावी इलाका भी गैरसंगठित मजदूरों की फैक्ट्री बन गया है, जहाँ मल्टीनेशनल कंपनियों के सैकड़ों एजेंट अपने ही लोगों के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। कोड़ी के भाव के खराब हो चुके पार्टस रिसाइकिल होने के बाद हजारों की कीमत का भाव रखते हैं। नदियों की अविरल बहती धारा में बड़े पैमाने पर इन पार्टस का गंदा पानी जहर के रूप में घोला रहा है।

सरकार से सवाल है कि क्या ये जनता के अधिकारों का हनन नही है? उनके स्वास्थ्य से खिलवाड़ का हक आखिर इस धंधे में लगे लोगों को किसने दिया? ई–कचरे को जमीन में दबाना या जलाना एक वैकल्पिक उपाय तो हो सकता है लेकिन उस कचरे की रिसाइकिलिंग निश्चित तौर पर एक बेहतर उपाय होगी, लेकिन इसके लिए जरूरत है एक राष्ट्रीय सोच की और सबसे अधिक जागरूकता की।

सरकार की पहल, इंतजार ही बढ़ाएगी इसलिए जागरूकता का प्रसार अपने स्तर पर शुरू हो जाना चाहिए। ई–वेस्ट बहुत बड़ा खतरा है, जब तक उसे मैनेज न किया जाए। मैनेज करने के बाद वो निश्चित तौर पर किफायती ही साबित होगा। ❑

बलात श्रम का अभिशाप

हम अपने रोजमर्रा के जीवन में बाल श्रम से संबंधित भिन्न–भिन्न क्षेत्रों मे कार्य करते छोटे–छोटे बच्चें जिनकी उम्र 13–14 वर्ष से कम होती है, ये बच्चे छोटे से लेकर बड़े ढाबा, मोटर गैराज, रेलगाड़ी में झाडू लगाने से लेकर गुटखा बेचने तक, चाय की दूकान, कूड़ा चुनने आदि कार्य में लगे रहते हैं। रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड या अन्य भीड़भाड़ वाली जगह जहां पर आदमी का आना जाना लगा रहता है वहां आप इनसे परिचित हो सकते हैं। चाहे आप देश की राजधानी दिल्ली के ह्रदयस्थली कहे जाने वाली कनॉट प्लेस में हो, या देश के कहीं अन्य क्षेत्र में जिसमें इनका बॉस यहां–वहां कार्यानुरूप दिशा–निर्देश देते रहता है। इन बच्चों का न तो खाने का समय निश्चित है, न सोने का, छुट्टी तो मिलती नहीं। अस्वस्थ हो जाने पर भी ये कार्य में लगे रहते हैं।

■ बरुण कुमार सिंह

बहुत से लोगों की यह अवधारणा है कि बलात श्रम का मतलब है, घंटों तक खराब स्थितियों में बहुत कम वेतन पर काम करना। लेकिन इससे इतर दो परिस्थितियां जरूर लागू होती हैं, यह काम बिना इच्छा के कराया जाता है और उसे दंड दिए जाने की धमकी के साथ कराया जाता है। कई बार यह धमकी मारपीट, यातना व यौन प्रताड़ना की आशंका के रूप में होती है लेकिन इसमें पहचान पत्र को जब्त कर लेना या निर्वासित करने की भी धमकी शामिल हैं।

बलात श्रम सर्वव्यापी है। यह कृषि, निर्माण, घरेलू काम, ईंट भट्ठे व यौन व्यापार सभी क्षेत्रों में और हर महाद्वीप, हर अर्थव्यवस्था व लगभग हर देश में पाया जाता है। इसके बावजूद यह विरोधाभास ही है कि इसे हमारे समय की सबसे अप्रकट समस्याओं में से एक बताया जाता है।

मानव तस्करी बलात श्रम से जुड़ा शायद सबसे 'हाई प्रोफाइल' पहलू है। लेकिन अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अध्ययन का अनुमान है कि यह दुनिया–भर में कराए जाने वाले बलात श्रम का मात्रा एक बटा पांचवां हिस्सा है। मानव तस्करी जिसके तहत आर्थिक शोषण के लिए लोगों को भर्ती की जाती है व लोगों को यहां से वहां ले जाया जाता है, इसमें एक जगह से दूसरी जगह भिन्नता पायी जाती है।

मासूम बच्चों को हम प्रतिदिन बड़ी ही दयनीय एवं त्रासद स्थितियों में काम करते हुए देखते हैं, वहां न तो हमारी चेतना काम करती है, न हमारी इनके प्रति संवेदना होती है, न हमारा मानवाधिकार आंदोलित होता है और न ही मीडिया इस ओर कोई सकारात्मक कदम उठाती है। हमारी रक्षक पुलिस उसी से चाय, सिगरेट, गुटखे आदि लेकर चली जाती है, क्योंकि उसे एफ.आई.आर. दर्ज कराने वाला, कागजी कार्रवाही करनेवाला मिलेगा तभी वह अपने कर्त्तव्यरूपी कदम आगे बढ़ाएगी। आखिर इससे छुटकारा कैसे मिलेगा?

संक्षेप में, आंकड़े बताते हैं कि तस्करी से लाये गये अधिकतर लोग संक्रमणकालीन व औद्योगिकृत देशों, क्षेत्रों में काम करने को विवश होते हैं। इनमें से लगभग आधे लोगों को यौन शोषण के लिए तस्करी की जाती है। ये सभी महिलाएं या बच्चे होते हैं। लेकिन इन अप्रिय परिस्थितियों का मानव तस्करों को जबरदस्त लाभ होता है। आई.एल.ओ. का अनुमान है कि मानव तस्करी से तस्करों को हर वर्ष 32 करोड़ डॉलर का मुनाफा होता है।

इस तरह का शोषण केवल विकासशील देशों या परंपरागत ताबेदारी व्यवस्थाओं तक सीमित नहीं। दिवालियेपन के ऐसे नए रूपों को औद्योगिकृत देशों व आमतौर पर मुख्यधारा के आर्थिक क्षेत्रों में भी देखा जा सकता है। भर्ती एजेंसियों द्वारा बेईमान तौर–तरीकों और बहुत ठेकदारों के फीस के चलते ऐसे मूल्य चुकाने पड़ते हैं, जिनके परिणामस्वरूप प्रवासी लोग ऋण बंधुआ बना दिये जाते हैं।

उदाहरण के लिए जनजातियों लोगों को वैध काम मिलने में परेशानियां होती हैं और यह सोचकर कि इससे उन्हें गरीबी से निजात मिलेगी, वे बलात श्रम संबंधों में दाखिल हो जाते हैं। परिणामतः जब वे कर्ज के बोझ तले दब जाते हैं और इसके बाद उन्हें बहुत से कम मेहताना मिलता है, तो वे अपना कर्ज चुकाने की स्थिति में कभी नहीं आ पाते, भले ही वे कितनी ही मेहनत करें या काम करें।

यह कर्ज कई बार परिवार के एक से दूसरे सदस्य या एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी तक ज्यों का त्यों चलता रहता है जिससे बच्चे और पोते–परपोते तक निरंतर अभाव झेलते रहते हैं।

ऐसे हालात में अक्सर महिलाएं क्रूर नियोक्ताओं का शिकार होती हैं। भारत व बांग्लादेश में कई युवतियों को ऐसे ही कर्ज के नाम पर वेश्यावृत्ति करनी पड़ती है, चूंकि चकलाघर मालिक उन्हें खाना, कपड़ा, मेकअप व जीवनयापन का खर्च दे रहा है। इस कर्ज को उतारने के लिए उन्हें बिना किसी वेतन के सालों तक या उससे भी ज्यादा जीवनपर्यंत काम करना पड़ता है।

श्रमिकों को कर्ज तले दबाने का एक दूसरा माध्यम है, वेतन एडवांस में देना। पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत में कोयला खदानों में कई मजदूर एडवांस में वेतन ले लिया करते हैं जिन्हें महीने के वेतन में काटा जाता है। इन मजदूरों के जीवनयापन के सामानों की खरीददारी के जरिए ये कर्ज लगातार बढ़ते जाते हैं और कई बार नियोक्ता भी अपनी बही–खाते में इन्हें बढ़ा–चढ़ा कर दर्ज करते हैं। इसके बाद इन मजदूरों की लंबी–चौड़ी ऋण बंधुआगिरी करनी पड़ती है। जो मजदूर इस काम को छोड़ना चाहते हैं, अक्सर उन्हें धमकियों व शारीरिक हिंसा का शिकार होना पड़ता है।

श्रम दिवस पर विशेष

इस समय दुनिया में करीब 12 करोड़ 30 लाख लोग बलात श्रम को विवश है। इनमें से ज्यादातर एशिया में रहते हैं। यहां इस संख्या में लगभग दो तिहाई लोग आर्थिक शोषण के नाम पर निजी नियोक्ताओं द्वारा जबरन काम करने को मजबूर होते हैं। एशिया में बलात श्रमिकों का लगभग एक बटा दसवां हिस्सा व्यावसायिक यौन शोषण के लिए प्रयुक्त होता है।

एशिया, लैटिन अमेरिका व उपसहारा अफ्रीका में 20 प्रतिशत से कम बलात श्रमिक तस्करी का शिकार रहे हैं, जबकि मध्यपूर्व व औद्योगिककृत तथा संक्रमण–कालीन अर्थव्यवस्थाओं में यह संख्या 75 प्रतिशत से अधिक है। ये श्रमिक मुख्य रूप से महिलाएं व बच्चें होते हैं।

चूंकि स्रोत उम्र के बारे में सूचना नहीं देते, इसलिए आयु के मुताबिक परिणामों के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं होती। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का अनुमान है कि सभी बलात श्रमिकों में 40 से 50 प्रतिशत बच्चे होते हैं।

इसके साथ–साथ हम अपने रोजमर्रा के जीवन में बाल श्रम से संबंधित भिन्न–भिन्न क्षेत्रों मे कार्य करते छोटे–छोटे बच्चें जिनकी उम्र 13–14 वर्ष से कम होती है, ये बच्चे छोटे से लेकर बड़े ढाबा, मोटर गैराज, रेलगाड़ी में झाडू लगाने से लेकर गुटखा बेचने तक, चाय की दूकान, कूड़ा चुनने आदि कार्य में लगे रहते हैं। रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड या अन्य भीड़भाड़ वाली जगह जहां पर आदमी का आना जाना लगा रहता है वहां आप इनसे परिचित हो सकते हैं।

चाहे आप देश की राजधानी दिल्ली के हृदयस्थली कहे जाने वाली कनॉट प्लेस में हो, या देश के कहीं अन्य क्षेत्र में जिसमें इनका बॉस यहां–वहां कार्यानुरूप दिशा–निर्देश देते रहता है। इन बच्चों का न तो खाने का समय निश्चित है, न सोने का, छुट्टी तो मिलती नहीं। अस्वस्थ हो जाने पर भी ये कार्य में लगे रहते हैं।

इन मासूम बच्चों को हम प्रतिदिन बड़ी ही दयनीय एवं त्रासद स्थितियों में काम करते हुए देखते हैं, वहां न तो हमारी चेतना काम करती है, न हमारी इनके प्रति संवेदना होती है, न हमारा मानवाधिकार आंदोलित होता है और न ही मीडिया इस ओर कोई सकारात्मक कदम उठाती है। हमारी रक्षक पुलिस उसी से चाय, सिगरेट, गुटखे आदि लेकर चली जाती है, क्योंकि उसे एफ.आई.आर. दर्ज कराने वाला, कागजी कार्रवाही करनेवाला मिलेगा तभी वह अपने कर्त्तव्यरूपी कदम आगे बढ़ाएगी। आखिर इससे छुटकारा कैसे मिलेगा?

हम अपने बच्चों को अपने घर का काम खुद उसे नहीं करने देते, क्योंकि उसके पढ़ने का यही समय है, भविष्य संवारने का समय है। जब तक हम अपनी सोच में परिवर्तन नहीं लायेंगे ये कार्य ऐसे ही चलते रहेंगे? बलात श्रम एक सामाजिक अभिशाप है जिसकी आधुनिक विश्व में कोई जगह नहीं है। अब यह तो समय ही बताएगा कि विश्व आखिर किस शताब्दि में है? ❑

फिर निकला बोतल ने बोफोर्स का जिन्न

लिंडस्टार्म ने बताया है कि इटैलियन व्यापारी ओक्टोवियो क्वात्रोची की भूमिका पर पूरी तरह से परदा डालने के लिए उन पर भारत के बड़े नेताओं का दबाव था। उन्होंने दूसरी चौंकाने वाली बात यह कही कि इस मामले में राजीव गांधी के मित्र अमिताभ बच्चन के खिलाफ किसी भी तरह का सबूत न होने के बाद भी उन्हें फँसाने के लिए भी दबाव था। इस रहस्योद्घाटन से अमिताभ बच्चन को काफी राहत हुई है। उनके अनुसार दु:ख इस बात का है कि ऐसा उनके माता–पिता के रहते नहीं हो पाया। उन्हें निर्दोष साबित होने में 25 वर्ष लग गए।

■ डॉ. महेश परिमल

बोफोर्स कांड हमारे देश के लिए एक बदनुमा दाग है। लेकिन इस दाग को धोने की कभी कोई ईमानदाराना कोशिश नहीं हुई। देखा जाए, तो बोफोर्स से बड़ा कांड तो उसे दबाने का है। राजीव गांधी सरकार की पूरी कोशिश रही कि इसमें धन किसने लिया है, उसका नाम कभी सामने न आने पाए। पूरी कवायद इस मामले को दबाने की ही रही है। इसीलिए यह मामला इतना संगीन था, पर इस देश की कई पीढ़ियाँ भी बोफोर्स के सही अपराधी का नाम नहीं जान पाएँगी। यह भारतीय राजनीति का ऐसा दुरूस्वप्न है, जिसे दोबारा देखना किसी हादसे से कम नहीं होगा।

राजनेताओं की ढिलाई किस हद तक हो सकती है, यह इस मामले से जाना जा सकता है। सत्ता के दलाल अपना खेल, खेल जाते हैं और प्रजातंत्र सिसकता रहता है।

बोफोर्स कांड पहली बार 15 अप्रैल सन् 1987 में सामने आया था। मानो इस घटना की सिल्वर जुबली हुई हो, इस तरह से यह मामला एक बार फिर भारतीय राजनीति के परिदृश्य में छा गया है। इस बार इसका खुलासा स्वीडन के भूतपूर्व पुलिस प्रमुख स्टेन लिंडस्टार्म के एक साक्षात्कार से हुआ है।

अपने साक्षात्कार में लिंडस्टार्म ने बताया है कि इटैलियन व्यापारी ओक्टोवियो क्वात्रोची की भूमिका पर पूरी तरह से परदा डालने के लिए उन पर भारत के बड़े नेताओं का दबाव था। उन्होंने दूसरी चौंकाने वाली बात यह कही कि इस मामले में राजीव गांधी के मित्र अमिताभ बच्चन के खिलाफ किसी भी तरह का सबूत न होने के बाद भी उन्हें फँसाने के लिए भी दबाव था। इस रहस्योद्घाटन से अमिताभ बच्चन को काफी राहत हुई है। उनके अनुसार दु:ख इस बात का है कि ऐसा उनके माता–पिता के रहते नहीं हो पाया। उन्हें निर्दोष साबित होने में 25 वर्ष लग गए।

यहाँ सवाल यह उठता है कि अमिताभ को फँसाने और ओक्टोवियो क्वात्रोची को बचाने के लिए आखिर किस नेता ने दबाव बनाया था। इसका खुलासा क्यों नहीं हो पा रहा है? बोफोर्स कांड तो केवल 64 करोड़ रुपए का था, 2–जी स्पेक्ट्रम 1.75 लाख करोड़ के आगे यह राशि तो कुछ भी नहीं है। बोफोर्स कांड पिछले 25 वर्षों से देश की राजनीति में बार–बार सामने आता रहा है और हर बार गांधी परिवार को शर्मसार होना पड़ा है। इस कांड का मुख्य आरोपी कौन है, क्या भारतीय जनता कभी उसका नाम जान पाएगी? यह प्रश्न पिछले 25 सालों से देश को मथ रहा है।

बोफोर्स कांड तो केवल 64 करोड़ रुपए का था, 2–जी स्पेक्ट्रम 1.75 लाख करोड़ के आगे यह राशि तो कुछ भी नहीं है। बोफोर्स कांड पिछले 25 वर्षों से देश की राजनीति में बार–बार सामने आता रहा है और हर बार गांधी परिवार को शर्मसार होना पड़ा है। इस कांड का मुख्य आरोपी कौन है, क्या भारतीय जनता कभी उसका नाम जान पाएगी? यह प्रश्न पिछले 25 सालों से देश को मथ रहा है।

मामले को दबाने की पूरी कोशिश हुई

15 अप्रैल 1987 को बोफोर्स कांड का धमाका स्वीडन रेडियो पर हुआ था। इस सौदे में 64 करोड़ रुपए की रिश्वत दी गई थी। तब राजीव गांधी सरकार हिल गई थी। इस रिश्वत को देने के लिए भारतीय राजनेताओं और दलालों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाने के लिए इटली के व्यापारी ओक्टोवियो क्वात्रोची का उपयोग किया गया था। क्वात्रोची गांधी परिवार का काफी करीबी था। इस कांड में शंका की सूई सदैव राजीव गांधी पर ही जाकर टिकती थी। इसीलिए इसकी लीपापोती करने के लिए एक बड़ा ऑपरेशन किया गया। ऐसा ऑपरेशन भारतीय राजनीति में इसके पहले कभी नहीं देखा गया था। यह ऑपरेशन बोफोर्स से भी बड़ा कांड था। इसमें सीबीआई और आईबी का खूब इस्तेमाल भी किया गया। जब यह कांड बाहर आया, तब सीबीआई जैसी भारत की मुख्य जाँच एजेंसी को इस मामले की तह

पर जाने के लिए कहा गया। सीबीआई के अधिकारी जाँच के बहाने यूरोप के अनेक देश घूम आए। उनका इरादा साफ था कि इसके सबूत को खोजने के बजाए उसे नष्ट कर दिया जाए। किसी भी रूप में यह मामला सामने न आए, इसकी पूरी कोशिश हुई। इसके लिए जो मशक्कत की गई, उसकी पटकथा राजीव गांधी ने लिखी थी। इसीलिए शक की सूई बार–बार राजीव गांधी पर आकर अटक जाती थी।

इस कांड के चलते राजीव गांधी को सत्ता से दूर होना पड़ा था। उनके बाद विश्वनाथ प्रताप सिंह प्रधानमंत्री बने थे। राजीव गांधी ने जिस तरह से बोफोर्स कांड पर परदा डालने के लिए जाँच एजेंसियों का गलत इस्तेमाल किया था, ठीक उसी तरह वी.पी. सिंह सरकार ने इस मामले में राजीव गांधी की भूमिका को पर्दाफाश करने के लिए इन संस्थाओं क दुरुपयोग किया। वी.पी. सिंह के सचिव भूरे लाल के अनुसार स्व. राजीव गांधी के आर्थिक व्यवहार की जाँच के लिए यूरोप की एक निजी जाँच एजेंसी की सेवाएँ ली गई थी। इस एजेंसी ने जो कुछ भी जानकारी हासिल की, उसे कुछ पत्रकारों को देकर राजीव गांधी की छवि को धूमिल करने पूरी कोशिश की गई। उस समय राजीव गांधी विपक्ष के नेता थे। वी.पी. सिंह के तमाम प्रयासों के बाद भी बोफोर्स कांड का सत्य बाहर नहीं आ पाया।

स्टेन ने ही दिए थे चित्रा को कागजात

बोफोर्स के बारे में जो कुछ हम जानते हैं, उसमें हिंदू अखबार की पत्रकार चित्रा सुब्रमण्यम की महत्वपूर्ण भूमिका है। 1987 में जब यह कांड बाहर आया, तब वे जिनेवा में पदस्थ थीं। उस समय स्वीडन के पुलिस प्रमुख स्टेन लिंडस्टार्म थे। उन्हीं ने चित्रा को बोफोर्स के गुप्त कागजात सौंपे थे। भारत में जब इस कांड ने तहलका मचाया, तब प्रजा के विरोध के चलते जाँच के लिए संयुक्त संसदीय समिति का गठन किया गया। इसकी रिपोर्ट दो वर्ष बाद आई। आश्चर्य की बात यह है कि 1987 के अगस्त में यह मामला बाहर आया, लेकिन सीबीआई ने 1989 तक इसकी एफआरआई नहीं लिखी थी।

मतलब यही कि जब तक राजीव गांधी प्रधानमंत्री रहे, तब तक इसकी एफआरआई ही नहीं लिखी गई। 1989 में जब लोकसभा के चुनाव हुए, तब कांग्रेस को बहुमत नहीं मिला, तब वीपी सिंह प्रधानमंत्री बने। उसके बाद जनवरी 1990 में इस मामले की एफआईआर सीबीआई ने लिखी। 1991 की मई में राजीव गांधी की हत्या हो गई।

लोकसभा चुनाव हुए और नरसिंह राव प्रधानमंत्री बने, तब बोफोर्स मामले की जाँच सीबीआई ने ढीली कर दी। आश्चर्य की बात यह है कि उस समय ओक्टोवियो क्वात्रोची भारत में ही था। वह तो जुलाई 1993 में भारत से चला गया। सीबीआई की वर्षों की मेहनत से यह सामने आया कि स्वीस सरकार ने 1997 में अपने बैंक के गुप्त खातों की जानकारी दी। जिसमें बोफोर्स कांड की रिश्वत जमा होने की जानकारी दी गई।

क्वात्रोची निर्दोष साबित

सीबीआई ने 1997 के अंत में बोफोर्स मामले में जो चार्ज शीट फाइल की, उसमें स्व. राजीव गांधी के अलावा ओक्टोवियो क्वात्रोची, बोफोर्स कंपनी के भूतपूर्व प्रमुख मार्टिन आर्डबो, बोफोर्स के भारत के एजेंट विन चड्डा, तत्कालीन रक्षा सचिव एस. के. भटनागर आदि का नाम था। जब यह आरोप पत्र फाइल किए गए, तब क्वात्रोची मलेशिया में था। उसकी धरपकड़ के लिए सन् 2000 में भारत सरकार द्वारा मलेशिया सरकार को पत्र भी लिखा गया था। इस समय सत्ता पर एनडीए सरकार थी। तब प्रधानमंत्री थे अटल बिहारी वाजपेयी। किन्हीं कारणवश सरकार ने बोफोर्स कांड की जाँच को धीमा करने का आदेश दिया गया। इसका लाभ क्वात्रोची ने भरपूर उठाया। मलेशिया सरकार ने उसे जमानत पर रिहा कर दिया। 2001 में विन चड्डा और भटनागर का निधन हो गया।

2004 में दिल्ली हाईकोर्ट ने यह फैसला सुनाया कि बोफोर्स कांड में पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की भूमिका के कोई सबूत नहीं मिले हैं। इस मामले का आरोपी ओक्टोवियो क्वात्रोची ही था। इस पर सीबीआई के अनुरोध के चलते ओक्टोवियो क्वात्रोची की गिरफ्तारी के लिए इंटरपोल ने रेड कार्नर नोटिस जारी किया था। इस नोटिस के अनुसार अर्जेंटिना की पुलिस ने 2007 में क्वात्रोची की धरपकड़ की थी, उस समय उसे भारत लाकर उस पर मुकदमा चलाया जा सकता था, पर ऐसा नहीं हो पाया। पर भारत सरकार ने अर्जेंटीना सरकार को आवश्यक कागजात नहीं दिए, इसलिए क्वात्रोची एक बार फिर छूट गया।

मार्च 2011 में सीबीआई ने क्वात्रोची को सारे आरोपों से मुक्त कर निर्दोष साबित कर दिया। आज की तारीख में भारत में क्वात्रोची के खिलाफ कोई मामला नहीं है। अब वह इज्जत के साथ भारत आ सकता है। इस मामले में अब तक के परिश्रम से यही बाहर आया है कि स्वीडिश कंपनी द्वारा 64 करोड़ रुपए की रिश्वत दी गई थी। पर यह रिश्वत किसे मिली, यह किसी को नहीं पता।

स्वीडन के पुलिस प्रमुख के रहस्योद्घाटन से यही पता चलता है कि यह रिश्वत जिसे दी गई, उसकी पहचान छिपाने के लिए राजीव गांधी ने खूब मेहनत की थी। उसकी पहचान छिपाने के पीछे उनका इरादा क्या था, इसकी जानकारी शायद हमें कभी नहीं मिल पाएगी। ❑

माओवादियों से कैसे निपटें

अब हमारे नक्सल–प्रभावित राज्यों के मुख्यमंत्रियों को तय करना है कि वे इतिहास में अपना नाम किस रूप में लिखाना चाहते हैं। माओवादियों की समस्त लोक कल्याणकारी मांगों को उन्हें तुरंत मानना चाहिए लेकिन उन्हें यह भी बता देना चाहिए कि इसके बावजूद अगर हिंसा जारी रही तो उसे रोकने के लिए वे किसी भी हद तक जा सकते हैं। यह ठीक है कि भारत की सरकारें, इस्राइल, रूस और चीन की सरकारों की तरह बेरहमी नहीं दिखा सकतीं।

■ वेद प्रताप वैदिक

छत्तीसगढ़ और उड़ीसा के माओवादियों ने अपने बर्ताव से सिद्ध किया है कि वे न तो पाकिस्तान के तालिबान की तरह हैं और न ही फलस्तीन के उग्रवादियों की तरह! वे हिंसा का सहारा जरूर लेते हैं, महत्वपूर्ण लोगों का अपहरण भी करते हैं और उसके सहारे जमकर प्रचार भी पाते हैं लेकिन वे पत्थरदिल हत्यारे नहीं हैं। अपहृत अफसरों या नेताओं की तत्काल हत्या करने की बजाय वे अपनी राजनीतिक या रणनीतिक मांगें मनवाने की कोशिश करते हैं।

दूसरे शब्दों में वे चोर–डकैत नहीं हैं, मूलतः राजनीतिक लोग हैं। अगर उनके जीवन में कुछ आदर्श नहीं होते तो वे अपना जीवन इतने खतरे में क्यों डालते? अनेक माओवादी या नक्सलवादी लोग काफी संपन्न और सुशिक्षित परिवारों के युवा होते हैं। वे सारी सुख–सुविधा छोड़कर जंगलों और पहाड़ों में सड़ने क्यों जाते?

जंगलों और पहाड़ों में उन्हें क्या मिलता है? वहां वे किसके लिए काम करते हैं? उन्हें पता है कि उन्हें नेताओं की तरह गद्दियां नहीं मिलनी है, उन्हें दलाली नहीं करनी है, उन्हें नोट नहीं गिनने है। वहां तो उन्हें गरीब आदिवासियों के अधिकारों की लड़ाई लड़नी है। उन्हीं की तरह रहना खाना–पीना–सोना और उठना–बैठना है। पुलिस की गोलियों का शिकार भी बनना है। राजनीति वे भी कर रहे हैं लेकिन अपनी जान जोखिम में डालकर!

उन्हें पता है कि उनकी टक्कर किससे हैद्य जिस राज्य नाम की संस्था से उनकी टक्कर है, उसके पास फौज है, पुलिस है, नौकरशाही है, हथियार है और पैसा है। नक्सलवादियों को बेलेट की नहीं, बुलेट की राजनीति करनी है। उन्हें पता है कि राज्य को कभी परास्त नहीं कर सकते लेकिन फिर भी वे डटे हुए हैं।

भावुक हैं, आदर्शवादी हैं, अव्यावहारिक हैं। उनके मन में कोई दुराशय नहीं है लेकिन वे किसी किताबी कल्पना–लोक में विहार करते हैं। जिन आदिवासियों की दुर्दशा पर वे आंसू बहा रहे हैं, क्या उन्होंने कभी सोचा कि उनकी यह दशा क्यों है? इसके दो कारण तो एकदम स्पष्ट हैं। पहला तो यह है कि अंग्रेज के जमाने में यह भ्रम पैदा किया गया कि आदिवासियों के साथ ज्यादा

जंगलों और पहाड़ों में उन्हें क्या मिलता है? वहां वे किसके लिए काम करते हैं? उन्हें पता है कि उन्हें नेताओं की तरह गद्दियां नहीं मिलनी है, उन्हें दलाली नहीं करनी है, उन्हें नोट नहीं गिनने है। वहां तो उन्हें गरीब आदिवासियों के अधिकारों की लड़ाई लड़नी है। उन्हीं की तरह रहना खाना–पीना–सोना और उठना–बैठना है।

तो क्या यह मान लिया जाए कि वे जो कर रहे हैं, वह सही है और राज्य को उनके आगे घुटने टेक देने चाहिए? हमारे अनेक उग्र वामपंथी बंधु यही मानते हैं। वे

आदिवासियों को रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और चिकित्सा उसी तरह उपलब्ध होनी चाहिए, जैसे देश के शेष नागरिकों को होती है लेकिन इस पवित्र लक्ष्य की पूर्ति में सबसे बड़ी बाधा कौन बन रहे हैं? इस प्रश्न का उत्तर हमारे माओवादी बंधुओं की तरफ से ही आना चाहिए। इसमें शक नहीं है कि माओवादियों ने ऐसे–ऐसे पहाड़ों और जंगलों में स्कूल और अस्पताल खोल रखे हैं, जहां अभी तक सरकार पहुंच भी नहीं पाई है लेकिन उनसे कोई पूछे कि यही काम करने के लिए वे सरकार को बाध्य करें तो क्या वह बड़े और बेहतर ढंग से नहीं होगा?

मेल–जोल किया गया तो उनकी प्रजाति नष्ट हो जाएगी। उन्हें सभ्य समाज से दूर रखना ही बेहतर होगा। अंडमान–निकोबार के जारवा आदि कबीले आज भी पूर्ण नग्न और लगभग पाशविक जीवन बिता रहे हैं।

यह इसी नीति का परिणाम है। कबीलों को सभ्यता से दूर रखने का दूसरा बड़ा कारण यह भी था कि उन्हें आसानी से ईसाई बनाया जा सके। अनेक विदेशी पादरियों ने हमारे नेताओं के गले यह बात इतनी अच्छी तरह से उतार दी थी कि देखते–देखते हमारा पूर्वांचल ईसाई हो गया। ईसाई होने या कोई भी नया धर्म स्वेच्छ या स्वीकार करने में कोई बुराई नहीं है लेकिन हमारे आदिवासियों को ब्रिटिश राज्य ने अपने सम्राज्यवादी तोप का भूसा बनाया।

उनके अत्यंत पिछड़ेपन का तीसरा कारण यह है कि आजाद भारत में जो भी लोग उनके इलाकों में गए, उन्होंने उनके भोलपन का फायदा उठाया और उनका शोषण उन्होंने अंग्रेजों से भी ज्यादा किया।

अब हमारे माओवादी क्या कर रहे हैं? उनका आशय तो बहुत अच्छा है लेकिन उनके सारे द्राविड़ प्राणायाम का नतीजा क्या निकल रहा है? आदिवासियों का विकास अवरूद्ध हो गया है। डर के मारे व्यापारी और शिक्षक उन क्षेत्रों में जाते ही नहीं। सरकारी कर्मचारी मजबूरी में वहां पहुंचते हैं तो या तो वे घर से बाहर ही नहीं निकलते या शीघ्रातिशीघ्र तबादले की जुगाड़ में लग जाते हैं।

आदिवासियों को रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और चिकित्सा उसी तरह उपलब्ध होनी चाहिए, जैसे देश के शेष नागरिकों को होती है लेकिन इस पवित्र लक्ष्य की पूर्ति में सबसे बड़ी बाधा कौन बन रहे हैं? इस प्रश्न का उत्तर हमारे माओवादी बंधुओं की तरफ से ही आना चाहिए।

इसमें शक नहीं है कि माओवादियों ने ऐसे–ऐसे पहाड़ों और जंगलों में स्कूल और अस्पताल खोल रखे हैं, जहां अभी तक सरकार पहुंच भी नहीं पाई है लेकिन उनसे कोई पूछे कि यही काम करने के लिए वे सरकार को बाध्य करें तो क्या वह बड़े और बेहतर ढंग से नहीं होगा?

क्या माओवादी बड़ी–बड़ी सड़कें, बांध, बिजलीघर और कारखाने बना सकते हैं? क्या वे आदिवासियों के लिए विश्वविद्यालय कायम कर सकते हैं? क्या वे रेल और हवाई जहाज चलवा सकते हैं? ये सब सुविधाएं हमारे आदिवासियों को क्यों नहीं मिलनी चाहिए?

उनकी उपेक्षा इसीलिए होती रही कि आज तक कोई उनको प्रखर प्रवक्ता नहीं मिला। यदि माओवादी–नक्सलवादी लड़ाके सिर्फ आदिवासियों के प्रामाणिक प्रवक्ता बन जाएं तो वे केंद्र और राज्य सरकारों को हिलाकर रख सकते हैं। आदिवासी क्षेत्रों में इतनी अदोहित खनिज और वन्य संपदा है कि उसका दशांश भी उनके भले के लिए प्रयुक्त हो जाए तो उनका और भारत का, दोनों का उद्धार हो जाए।

यह आदर्श स्थिति प्राप्त करना आज आसान नहीं है, क्योंकि बंदूक–संस्कृति ने माओवादियों को पानी पर चढ़ा रखा है। उनके माथे पर ताकत का नशा सवार है। वे जानते हैं कि हमारे नेता लोग दब्बू हैं। वे केंद्र और राज्य के बीच भी झगड़ा डाले रहते हैं। आदिवासी क्षेत्रों में अपनी बादशाहत से माओवादी मुग्ध हैं। उसमें उनका निहित स्वार्थ भी विकसित हो सकता है लेकिन वे यह नहीं भूलें कि भारत में कुछ मुख्यमंत्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र की तरह भी हो सकते हैं, जिन्होंने बस्तर के राजा प्रवीणचंद्र भंजदेव को अत्यंत कठोर सबक सिखाया था।

अब हमारे नक्सल–प्रभावित राज्यों के मुख्यमंत्रियों को तय करना है कि वे इतिहास में अपना नाम किस रूप में लिखाना चाहते हैं। माओवादियों की समस्त लोक कल्याणकारी मांगों को उन्हें तुरंत मानना चाहिए लेकिन उन्हें यह भी बता देना चाहिए कि इसके बावजूद अगर हिंसा जारी रही तो उसे रोकने के लिए वे किसी भी हद तक जा सकते हैं। यह ठीक है कि भारत की सरकारें, इस्राइल, रूस और चीन की सरकारों की तरह बेरहमी नहीं दिखा सकतीं। अपराधियों को पकड़ने की प्रक्रिया में वह सैकड़ों निर्दोष नागरिकों को बलि नहीं चढ़ा सकतीं लेकिन क्या वे भारत को अफगानिस्तान और पाकिस्तान की तरह अराजक राज्य बनने दे सकती हैं? ❑

नहीं पूरे होने देंगे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के इरादे

बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने पहले से ही यूरोप और अमरीकी बाजारों पर वर्चस्व स्थापित कर लिया है इसलिए अब वे नये चारागाहों की तलाश में है। इसी कवायद में उन्होंने पहले तो दक्षिण पूर्व एशियाई देशों की ओर रूख किया और अब वे भारत में प्रवेश पाने को आतुर हो रही है।

अप्रैल 30 तारिख को आगरा में खुदरा क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कंपनियों को प्रवेश रोकने को लेकर स्वदेशी जागरण मंच आगरा द्वारा यूथ हास्टल में एक सेमिनार का आयोजन किया गया। जिसमें काफी संख्या में व्यापारी वर्ग ने भाग लिया। इसमें वक्ताओं ने केंद्र सरकार द्वारा खुदरा क्षेत्र में विदेशी निवेश खोलने की नीति की घोर निंदा की।

संजीव माहेश्वरी ने कहा कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दबाव में कई देशों की सरकारों ने अपने यहां खुदरा व्यापार को विदेशी निवेश के लिए खोला। उन देशों में छोटे ओर बड़े दुकानदार प्रतिस्पर्धा से बाहर हो गए।

इन कंपनियों ने पहले से ही यूरोप और अमरीकी बाजारों पर कब्जा कर लिया है। अब ये भारत में प्रवेश पाने को आतुर हो रही हैं।

सेमिनार में डा. अश्विनी महाजन ने कहा कि आज देश में खुदरा क्षेत्र में संलग्न 3.5 करोड़ लोगों और उसके साथ सहायक गतिविधियों में लगे लगभग 1.5 करोड़ लोगों के आस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है। इन 5 करोड़ लोगों की रोजी रोटी पर यह खतरा सरकार के द्वारा प्रस्तावित खुदरा क्षेत्र में विदेशी निवेश खोलने की नीति के कारण है।

यह सर्वविदित ही है कि इस प्रकार से खुदरा क्षेत्र में विदेशी कंपनियों को अनुमति का अर्थ है वालमार्ट, टैस्को, कैरी फॉर, स्पेंसर्स इत्यादि बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपने स्टोर खोलने की अनुमति प्रदान करना। 24 नवम्बर 2011 को कैबिनेट द्वारा मल्टी ब्रांड खुदरा क्षेत्र में 51 प्रतिशत विदेशी निवेश के अनुमति देने के निर्णय से इस क्षेत्र में संलग्न लागों पर खतरा मंडरा रहा है।

हालांकि लगभग सभी गैर–कांग्रेसी राजनीतिक दलो, व्यापारिक एवं मजदूर संघों तथा सामाजिक संगठनों के विरोध के बाद सरकार ने इस निर्णय का कार्यान्वयन अभी रोक दिया है, लेकिन सरकार द्वारा बार–बार यह कहा जा रहा है कि इस निर्णय को बदला नहीं गया है।

ध्यातव्य है कि हमारे देश में सामान्य तौर पर दुकानें 50 वर्ग फुट से 200 वर्ग फुट तक होती हैं। अधिकांश फुटकर व्यापारियों के पास तो अपनी दुकान भी नहीं होती और वे रेहरी, पटरी और खोमचा लगाकर अपना सामान बेचते हैं। तरह–तरह की परेशानियों का सामना करते हुए वे अपनी रोजी–रोटी किसी प्रकार से चलाते हैं। ये वे लोग है जिनके पास अपने रोजगार का कोई और विकल्प भी नहीं है।

दूसरी ओर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के स्टोर एक लाख वर्ग फुट या उससे भी बड़े होते हैं। एक ही छत के नीचे वे तमाम प्रकार की वस्तुओं को बेचते है। दुनिया भर का अनुभव यह बताता है कि जहां–जहां बहुराष्ट्रीय कंपनियां अपना स्टोर खोलती है, वहां–वहां 3 किलोमीटर की परिधि में कोई छोटी दुकान बचती नहीं है।

चूंकि इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने पहले से ही यूरोप और अमरीकी बाजारों पर वर्चस्व स्थापित कर लिया है इसलिए अब वे नये चारागाहों की तलाश में है। इसी कवायद में उन्होंने पहले तो दक्षिण पूर्व एशियाई देशों की ओर रूख किया और अब वे भारत में प्रवेश पाने को आतुर हो रही है।

डॉ. चंद्रमोहन ने कहा कि स्वदेशी जागरण मंच देशभर में इस विषय में लोगों को जानकारी देने का कार्य कर रहा है।

वाईके गुप्ता और राजकुमार सामा ने कहा कि यह देश के सम्मान की रक्षा की लड़ाई है। इस मौके पर अनिल अग्रवाल, सर्वेश वाजपेयी, उमेश गर्ग, डॉ. तरुण शर्मा आदि मौजूद थे। इसके अलावा काफी कार्यकताओं ने भी सेमिनार में भाग लिया।

खुदरा विदेशी निवेश से 5 करोड़ छोटे कारोबारी तबाह होंगे

"अपनों ने किया देश को बर्बाद" – शांता कुमार

दिनांक 5 मई 2012 : स्वदेशी जागरण मंच (पंजाब) द्वारा रिटेल में विदेशी पूंजी निवेश, भ्रष्टाचार एवं काला धन विषय पर आयोजित एक दिवसीय प्रांत सम्मेलन स्थानीय डेविएट कालेज में संपन्न हुआ।

सम्मेलन में राज्य से आए प्रतिनिधियों एवं व्यापार, उद्योग, राजनीतिक व सामाजिक संस्थाओं के बुद्धिजीवियों ने सरकार की आर्थिक नीतियों, भ्रष्टाचार व काला धन आदि मुद्दों की भर्त्सना की।

वरिष्ठ भाजपा उपाध्यक्ष शांता कुमार ने कहा कि ऐसा एक भी उचित कारण नहीं जिसके लिए विशाल रोजगार से परिपूर्ण क्षेत्र को विदेशियों को हवाले कर दिया जाए।

शांता कुमार जी ने कहा कि अंग्रेजों ने तो 200 वर्ष के राज में भारत का 1 लाख करोड़ लूटा, पर अपने लोगों ने 64 वर्षो की आजादी में 200 से 300 लाख करोड़ रुपए भ्रष्टाचार कर लूट लिए हैं और विश्व के 69 टैक्स हैवन देशों में जमा कर देश को बर्बाद किया है।

कंफैडरेशन ऑफ आल इंडिया ट्रेडर्स के महासचिव प्रवीण खंडेलवाल ने कहा कि अकेली वालमार्ट कंपनी का एक वर्ष का टर्न ओवर लगभग 20 लाख करोड़ है और हमारे रिटेल क्षेत्र का वार्षिक टर्न ओवर इसके बराबर है और इनसे हमारे गरीब रिटेलर्स प्रतिस्पर्धा करने की सोच भी नहीं सकते।

मंच के उत्तर क्षेत्र के सहसंयोजक प्रदीप ने बताया कि जहां वालमार्ट जैसी कंपनी अपने 9884 स्टोरों पर सिर्फ 21 लाख लोगों को नौकरी दे रही है वही लगभग वालमार्ट की वार्षिक बिक्री के बराबर हमारा रिटेल क्षेत्र लगभग 8 करोड़ लोगों को स्वयं रोजगार दे रहा है। इस क्षेत्र में विदेशी पूंजी निवेश से पूरी अर्थव्यवस्था ही चरमरा जाएगी।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रांत प्रचारक किशोर कांत ने कहा कि वर्तमान में स्वदेशी की सार्थकता और भी बढ़ जाती है। इसके अलावा अन्य वक्ताओं ने कहा कि जब गुलामी थी तो विदेशी लूटते थे आजादी हुई तो अपने लूट रहे हैं।

उन्होंने कहा कि काला धन विदेशी बैंकों के गुप्त खाताअें में जमा हाते है। मगर केन्द्र सरकार का इस तरफ कोई ध्यान नहीं। उन्होंने कहा कि विदेशी निवेश होने से छोटे कारोबारी सबसे ज्यादा प्रभावित होंगे। समारोह में कश्मीरी लाल जी,, प्रांत संयोजक डॉ. सुभाष शर्मा, कोष प्रमुख सी. ए. सुरिंदर आनंद, भगत चूनी लाल आदि ने संबोधित किया।

सम्मेलन में कृष्ण शर्मा, विजय बुद्धिराजा व ब्रिगेडियर गगमेजा, राकेश राठौड़, कृष्ण देव भंडारी, मनोरंजन कालिया, विजय सापला, सांसद अविनाश राय खन्ना, सी.पी.सी, सोम प्रकाश, कमल शर्मा, फुटवेयर ऐसासिएशन के प्रवीण हांडा एवं मनचंदा, दीवान अमित अरोड़ा आदि ने अपने विचार रखें और अनेक कार्यकर्ताओं ने सम्मेलन में भाग लिया। ❑